प्रकाशक—

मूलचन्द्र जैन "वत्सल"

संचालक—

साहित्य रत्नालय,

बिजनौर।
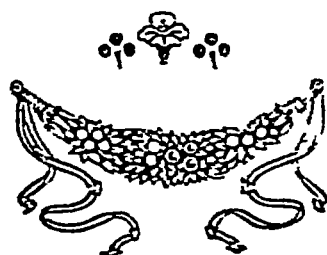
मुद्रक—

शान्तिचन्द्र जैन

"चैतन्य प्रिन्टिङ्ग प्रेस",

बिजनौर।

प्रस्तावना

प्रिय पाठको !

आज आपके समक्ष मैं यह तुच्छ भेंट लेकर उपस्थित होरहा हूँ। नाटक संसारमें यह मेरा प्रथम प्रयास और प्रवेश है; अस्तु, इस में अनेक त्रुटिएं होने की संभावना है, किन्तु हृदय की विशेष प्रेरणा के वशवर्ती हो कर मैं ने जो यह प्रयत्न किया है उसे आप केवल सच्चरित्रता और धार्मिकता के प्रति मेरी विशेष पूजा भक्ति समझ कर इसे ग्रहण कीजिए।

सच्चरित्रता मानव जीवन का उत्कृष्ट रत्न है, एवं समस्त सदाचरणों में ब्रह्मचर्य और एक पत्नीव्रत पालन सर्वश्रेष्ठ है। इस एक व्रत के द्वारा ही मानव विश्व पूज्य बन सकता है। किन्तु वर्तमान में सर्वसाधारण का लक्ष्य इस महान् व्रत के प्रति किंचित् भी आकृष्ट नहीं है। यही कारण है कि भारत में व्यभिचार की भयंकर ज्वाला तीव्र वेग से भड़क रही है। अस्तु इस नाटक द्वारा उसी ब्रह्मचर्य की महत्वता का ही प्रतिपादन किया गया है।

मुझे पूर्ण आशा है, कि इस नाटक द्वारा आप को एक उदार हृदय और सच्चरित्र व्यक्ति की धार्मिक दृढ़ता का पूर्ण परिचय प्राप्त होगा जिस से आपका हृदय सच्चरित्रता के महत्व की ओर अवश्य आकृष्ट होगा। हम प्रत्येक सहृदय व्यक्ति से अनुरोध करेंगे कि वह एक बार इसका आद्योपान्त अवश्य निरीक्षण करके हमारे श्रम को सफल करें।

बिजनौर
श्रावण १९८४

भवदीय—
मूलचन्द्र जैन "वत्सल"

पात्र परिचय

❀ पुरुष ❀

सुदर्शन (नायक)	ऋषभदेव श्रेष्ठी का पुत्र
देवदत्त, रुद्रदत्त	सुदर्शन कुमार के मित्र
ज्ञानानन्द	एक धर्मनिष्ट ब्रह्मचारी
धात्री वाहन	चंपानगर का राजा
ऋषभदेव	सुदर्शन कुमार के पिता
विषयानंद	एक व्यसनी युवक
मायानंद, दुर्गतानंद	विषयानंद के मित्र

इन्द्र, देवतागण विदूषक, नागरिक, द्वारपाल, वधिक इत्यादि ।

❀ स्त्रियां ❀

अभया	धात्रीवाहन राजा की रानी
कपिला	रुद्रदत्त पुरोहित की पत्नी
सुलोचना	सुदर्शन कुमार की पत्नी
सागर सेना	सुलोचना की माता
जिनमती	सुदर्शन की माता
यमुना	कपिला की सखी
सुन्दरी	एक सुशीला रमणी
पंडिता	अभया की धाय

दासी, सखियां इत्यादि ।

श्री जिनायनमः

सुदर्शन नाटक

प्रस्तावना

(नटाचार्य का प्रवेश)

नटाचार्य—(स्वय) अहा ! कैसा मनोरम और सुन्दर समय है. प्रकृति ने आज कैसा मनोमोहक साज सजाया है और मानवो के हृदयो मे आनन्द का स्रोत बहाया है। (सभासदों की ओर देखकर) समस्त सभासद् गणों का मन पूर्ण प्रसन्न और मोद मय है, प्रत्येक के मन मे आनन्द का संचार हो रहा है और प्रेम के उच्च भावो से हृदय सरसार हो रहा है। अपनी कला कुशलता और नाट्य कला दिखाने का यह उपयुक्त समय है। किसी कवि ने भी कहा है—

प्रेम भावना पूर्ण मन, हो सुमोद संपन्न।
नाटक और विनोद तब, करते हृदय प्रसन्न ॥
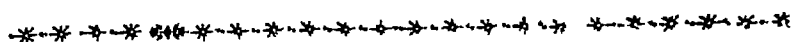
क्योंकि जिन का हृदय चिंताओं से निरन्तर व्याकुल रहता है, आपत्तियों की ज्वाला से सदैव धधकता रहता है-उन्हे नाटक और विनोद शूल की सदृश प्रतीत होते हैं; किन्तु जब हृदय समस्त चिंताओ से निर्मुक्त होकर शान्ति मग्न होता है, तब ही उत्तम दृश्य अवलोकन करने को तत्पर होता है। अस्तु. यह समय सर्वप्रकार नाटक दिखलाने योग्य है, तब इस सुन्दरता के स्थान में आनंद की सरस धारा क्यों न बहाऊं और अपनी कला कुशलता का परिचय कराऊं। तब फिर मैं अपनी प्राणप्यारी नटी को बुलाऊं। प्रिये ! हे प्रिये !

सुजन जनों के हृदय में, वर्द्धित करने मोद।
(नेपथ्य में) दिखलाऊंगी आज मैं, नाटक सहित विनोद॥

अहा ! मेरी पत्नी भी मेरे हृदय के भावों को जानने वाली है। क्यों न हो अन्त में है तो मुझ नटाचार्य की पत्नी ही। (दूर से अपनी पत्नी को आती देखकर) आओ प्रिये ! आज मेरी इच्छा है, कि हम इन सुजन जनों के सम्मुख कोई समयानुकूल उत्तम नाटक दिखलाएं किसी पवित्र हृदय महात्मा के आदर्श का चित्र खींचकर बतलाएं और दर्शकों के हृदयों में विनोद के साथ २ पवित्रता की लहरें उमगाएं। क्यों ठीक है न ?
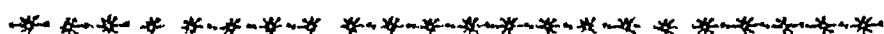
नटी—प्रियतम ! आप का प्रस्ताव तो वास्तव में समयानुकूल है, किन्तु आज कल के मानवों की रुचि आप के विचारों से सर्वथा प्रतिकूल है। आज कल तो आशिक़ माशूकी का ज़माना है। नौटंकी और अश्लील गायनों पर ही दर्शक गणों का मन दिवाना है, फिर आप के पवित्र भावों से भरे हुए सरल नाटक को कौन पसंद करेगा और वह किस का हृदय हरण करेगा।

नटाचार्य—प्रिये ! वास्तव में यह बात सर्वथा सत्य है, किन्तु समस्त मानवों के मन एक से नहीं होते हैं। क्योंकि जहां वृक्षों में शूल होते हैं वहाँ पर हृदय विमोहक फूल भी होते हैं। यदि कोई अश्लील गायनों और कुदृश्यों के दर्शक होते हैं तो कोई सच्चरित्र पवित्रता के उपासक भी होते हैं। अस्तु हमें इस बात का विचार न करके अपने कार्य को प्रारम्भ करना चाहिये।

नटी—अच्छा तब यह बात तो बतलाइए कि आज कौनसा नाटक खेल कर सच्चरित्रता का महत्व दिखलाया जाए और दर्शक मंडली का मन बहलाया जाए।

नटाचार्य—प्रिये ! आज वही सुदर्शन नाटक खेला जाए, जिसे सद्धर्म उपासक वत्सल महोदय ने अभी हाल ही

मे बनाया है और जिसमें नवीन भावों और गाथाओं द्वारा शीलव्रत का महत्व दिखलाया है।
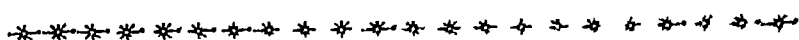
नटी—प्रियवर! आपने बहुत अच्छा कहा। यह नाटक अवश्य समयोपयोगी और चित्ताकर्षक होगा। बस, देव वन्दना पूर्वक अपना कार्य प्रारम्भ कीजिये।

(नटाचार्य और नटी दोनों देव वन्दना करते हैं)

जय, जय, जय, मदन, दहन अजर अमर देवा। प्रभु।
रत्न-त्रय-मुकुट-शीष मुक्ति कामनी के ईश,
सुर, नर, चर, अचर, सकल करत चरण सेवा॥ जय०॥
अविचल सुखसदन अमल, गुण अनंत सहित विमल,
मंगलकर, आनदभर, भव समुद्र खेवा॥ जय०॥
करुणाकर, करुणा कर, दीजे यह सुखकर वर।
भव दुख हर, पाऊं चिर-मुक्ति राज मेवा॥ जय०॥
सत्वर हो नष्ट कुमति, जागृत हो विमल सुमति।
दीन बन्धु "वत्सल" कीजे निजात्म एवा॥ जय०॥

(दोनो जाते हैं)

प्रथमाङ्क—प्रथम दृश्य
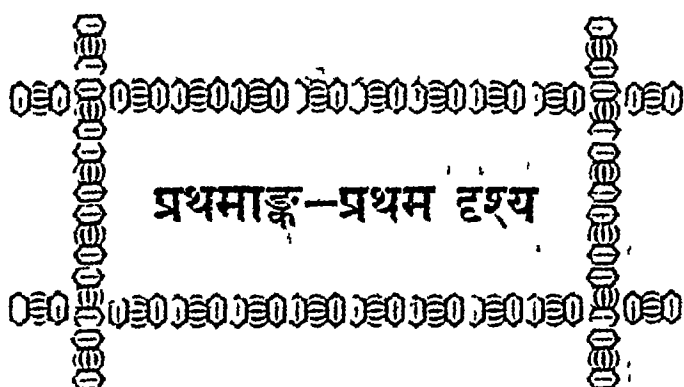
स्थान—नगर श्रेष्ठी का बगीचा। कुमारी सुलोचना अपनी अमला और विमला आदि सखियों के साथ क्रीडा कर रही है।

सुलोचना—(सखियों की ओर देखकर) प्यारी सखियां! देखो! आज यह चमेली की क्यारी किस प्रकार चाँदनी के समान स्वच्छ पुष्प समूह से परिपूर्ण होकर हृदय को विमोहित कर रही है।

अमला—कुमारी जी! इस समय यह यौवन के पूर्ण वेग से मदोन्मत हो रही है। सो ठीक ही है, इस अवस्था में प्रत्येक वस्तु की सुन्दरता बढ़ जाती है और जो स्वयं सुन्दर है, उसके लिये तो कहना ही क्या?

सुलोचना—हां! और इस ओर तो देखो; यह मौलश्री का वृक्ष जो कल श्रीविहीन हो रहा था, आज मनोरम पुष्पों से सज्जित हो कितना रमणीय ज्ञात होता है?

-

अमला—हां कुमारी जी ! समय पर प्रत्येक वस्तु मनोमोहक प्रतीत होती है।

सुलोचना—अरी सखियो ! देखो ! यह भ्रमर उस गुलाब की अर्द्ध विकसित कलिका पर किस प्रकार मुग्ध होकर शोर मचा रहे है।

अमला—हां सुमुखे ! भौंरो का तो यही स्वभाव हुआ करता है, कि वह जिस किसी सौंदर्य पूर्ण नवीन कलिका को देखते है उसी की ओर शोर मचाते हुये उस पर टूट पड़ते हैं। पुरुष समाज का यह बड़ा अत्याचार है। देखो तो ! (सुलोचना की ओर मुस्कराती हुई) बेचारी कलिका किस प्रकार लज्जित और संकुचित सी हो रही है। (सखियों की ओर देखकर) किन्तु हमारी इस अर्द्ध विकसित गुलाब कलिका पर अभी किसी रसिक भ्रमर की दृष्टि नही पडी। क्यो सखी ! इसीलिये ही इस का हृदय प्रेम पराग विहीन सा जान पडता है।

विमला—यह कलिका कोई साधारण कली तो है ही नही, जो कोई साधारण भ्रमर इसका रसास्वादन कर सके। इसके लिये तो कोई देवलोक का रसिक भ्रमर ही आवेगा।

अमला—हां सखी, बहुत ठीक कहा (सुलोचना-की ओर देखकर) क्यों कुमारी ठीक है न !

सुलोचना—चलो जी ! तुम्हें प्रत्येक समय यही विनोद ही सूझा करता है !

अमला—और आप को शायद घृणा रहा करती होगी ! तभी तो किसी भ्रमर राज को इस अधखिली कली का सौरभ ही प्रकट नहीं हो पाया। नहीं तो इन रसिक प्रकृति भ्रमरों का समूह इस नई कलिका पर आकर कब का शोर मचाने और इठलाने लगता।

सुलोचना—चल ! दूर हो। मैं तुझ से बात नहीं करना चाहती। तू बहुत चंचल हो गई है। अच्छा कोई इस समय के योग्य गीत तो गा !

सब सखिएं मिलकर—अच्छा

खिले उपवन में विविध प्रसून ! ध्रुव।

विकसित हुई नव्य कलिकाएं, लतिकाएं मनमुग्ध।
जिन्हें विलोक अहो ! विरही मन हुए पूर्णतः लुब्ध ॥ १ ॥

ललित स्वरों से, कोकिल हो मदमस्त रही है कूक।
करके जिसे श्रवण, उठती हृदयों में दाहक हूक ॥ २ ॥

* *

नवल-अर्द्ध-विकसित-कलिका पर भ्रमर रहे गुंजार ।
मनोमुग्ध हो, अहो ! कर रहे तनमन सभी न्योछार ॥ ३ ॥

मोहक दृश्य विलोक हृदय में, उठती तरल तरंग ।
नेत्र न होते तृप्त हृदय भर आती नवल उमंग ॥ ४ ॥

सुलोचना—अहा ! कितना मनोहर गीत है, कितना सरस भाव है, बिल्कुल सामयिक राग है ।

अमला—क्यों सुमुखे ! कितना उचित कहा है कि "हृदय भर आती नवल उमंग" क्यों सखी ठीक है न ?

सुलोचना लज्जित सी होकर नीचे को मुंह कर लेती है । फिर कुछ समय पश्चात् नभ मंडल की ओर देख कर कहती है—

"हे ! सायंकाल हो गया ! अच्छा सखी, चलो । अब अपने महल को चलें ! आज बहुत समय हो गया । यदि अधिक विलम्ब हो जायगा तो माता जी अप्रसन्न होंगी"

सब जाने को तैयार होती है, इसी समय सुदर्शन-कुमार अपने मित्र सहित वहाँ पर प्रवेश करते हैं और इन महिलाओं को देखकर अपने मित्र से सहसा कह उठते हैं—

-

"हैं ! यहाँ पर तो यह सुन्दरियें क्रीड़ा कर रही हैं।
देखो ! सब इसी ओर आरही हैं"।

(इसी समय सुलोचना कुमारी का सुदर्शन कुमार की ओर देखना और परस्पर एक दूसरे को अवलोकन कर मोहित होना)

सुदर्शन—(स्वगत) हैं यह कौन सुन्दरी रमणी है जो इस प्रकार अनिमेष दृष्टि से मेरी ओर अवलोकन कर रही है। इसे देखकर मेरे हृदय में क्यों इस प्रकार प्रेमभाव उत्पन्न हो रहा है ? क्यों स्नेह का भाव उमड़ रहा है ?

(सुलोचना की ओर देखकर लज्जित सा होकर दृष्टि हटा लेता है।)

(प्रत्यक्ष में) मित्र ! चलो ! इन सुन्दरियों के विनोद स्थान में प्रवेश करना उचित नहीं है !

(सब का प्रस्थान)

प्रथमाङ्क—द्वितीय दृश्य
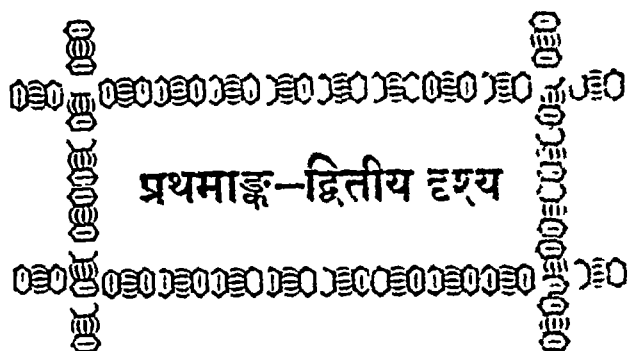
{ स्थान—सुदर्शन सेठ की बैठक. सुदर्शन कुमार अपनी बैठक में किसी विचार में मग्न हुआ बैठा है। }

सुदर्शन—(स्वगत) रमणी के रूप में भी क्या विलक्षण आकर्षण शक्ति है, कि वह मानवों के मन को बलात् अपनी ओर खींचती है।

मैंने उसे आज तक कभी भी नहीं देखा, उस के साथ वार्तालाप भी नहीं किया, किन्तु केवल एक वार के साधारण दर्शन मात्र से ही मेरा हृदय क्यों उस के ऊपर इतना आसक्त हो रहा है। मेरा मन क्यों इतना चंचल हो रहा है और वह सुन्दर मूर्ति प्रति समय मेरे सम्मुख आ आकर क्यों खड़ी हो जाती है। वह कौन थी? किस की कन्या थी? आदि परिचय रहित होकर भी मेरा हृदय उस के ऊपर क्यों समर्पण हो रहा है?

****
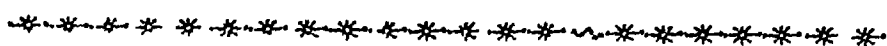
(देवदत्त का प्रवेश)

(स्वगत) ज्ञात हो गया; आज उस सुन्दरी को देख कर ही इन का समस्त ज्ञान, ध्यान नष्ट हो गया; आज यह भक्ति भाव को भूलकर उसी के भक्त बने ध्यान में लवलीन बैठे हुए हैं। सच है ! रमणी के कुटिल कटाक्ष के सम्मुख समस्त विवेक और ज्ञान नष्ट हो जाता है। किन्तु यह अच्छा ही हुआ जो इस वैरागी के हृदय में इस प्रकार प्रेम का अंकुर उत्पन्न हुआ। अब ज़रा इस के प्रेम की परीक्षा भी तो कर लेना चाहिए।

(प्रत्यक्ष में) क्यों मित्र ? आज आप इस प्रकार उदास क्यों बैठे हुए हैं। क्या आज आप के पूजन पाठ में कुछ विघ्न पड गया ? अथवा आप के स्वाध्याय में कुछ उपसर्ग हो गया ? जिस से आज आप इतने चिंता मग्न हो रहे हैं।

सुदर्शन—(चौंक कर और ऊपर को देखकर) कौन! क्या कहा ? नहीं कुछ नहीं; मैं यूं ही बैठा बैठा कुछ विचार कर रहा था।

देवदत्त—नहीं, आज आप के भोजन में ज़रूर कोई अभक्ष्य पदार्थ आ गया होगा अथवा आप के सामने किसी

ने कोई रमणी पुराण आरम्भ कर दिया होगा इसी से आप का हृदय

सुदर्शन—(बीच में ही रोक कर) नहीं मित्र ! यह कोई बात नहीं हुई, मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। आप मुझे इस प्रकार क्यों बना रहे हैं ?

देवदत्त—वाह जी वाह ! मैं आप को बना रहा हूँ, कि आप इस प्रकार मुंह बनाकर अपने हृदय की बात छुपा कर मुझे बना रहे हैं। खूब ! आप अपने मन के भावों को छिपाने की चेष्टा कर रहे हैं। किन्तु आप की आँखें तो आप के मनोभाव को साफ़ २ प्रकट कर रही हैं।

मित्रों से मन की बात छुपाई नहीं जाती।
लो बात छिपा, आँख छुपाई नहीं जाती॥

सुदर्शन—क्या कहूँ मित्र ! सच मुच मैं बहुत छिपाना चाहता हूँ, परन्तु हृदय का भेद छिपाये से नहीं छिपता। हां ! आज मैंने जब से उस सुन्दरी देवकन्या को देखा है, तब से

देवदत्त—हां ! हां कहिए ! तब से ही आप के हृदय में संसार से पूर्ण विरक्ति हो रही है, आप रमणी मात्र से
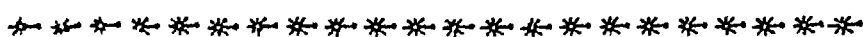
घृणा करने लगे हैं और आप उसे स्वप्न में भी देखने की इच्छा नहीं करते हैं; क्यों ! मित्र ठीक है न !

सुदर्शन—लीजिए ! आप तो अपना ही राग अलापने लगे। मैं कह रहा हूँ, कि तब से ही मेरे हृदय में घोर वेदना हो रही है।

देवदत्त—(आश्चर्य से) एं ! वेदना ! और हृदय में ! क्यों ? क्या उस ने आप के ऊपर कुछ आघात किया है ? आप ऐसे सज्जन सरल व्यक्ति के हृदय पर ! तब तो वह अवश्य कोई बड़ी निष्ठुर हृदया जान पड़ती है, जो उस ने आप के ठीक हृदय ही पर लक्ष्य किया। कहां ? देखूं कोई विशेष चोट तो नहीं आई।

सुदर्शन—मित्र ! आप क्यो मेरे हृदय की वेदना को इस प्रकार अधिक भड़का रहे हैं। सचमुच मैं उस की मनो मोहिनी मूर्ति पर तभी से मुग्ध हो गया हूँ।

देवदत्त—क्या कहा ! आप मुग्ध हो गए हैं, उस की उस लक्ष्य कला पर जिससे उसने आप के बिलकुल हृदय पर निशाना लगाया। क्यों न हो आख़िर निशाना भी तो अचूक लगा है। तब तो आप उसे अवश्य कुछ पारितोषक देंगे।

सुदर्शन—प्रिय मित्र ! आप मेरी बातों को क्यों विनोद

-
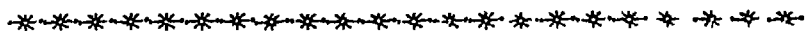
में डाल रहे है ? (करुणस्वर से) मेरे हृदय मे मारणान्तिक वेदना हो रही है, मै विरह की तीव्र ज्वाला से जला जा रहा हू और आप को हंसी सूझ रही है। क्या आप को मेरी इस दशा पर दया नहीं आती ?

देवदत्त—(स्वगत) मालूम पड रहा है. अब यह सीधे रास्ते पर आ रहे है रूप की मार ऐसी ही होती है।

(प्रत्यक्ष में) तब कहिए किसी योग्य वैद्य को बुलवाऊ और आप के इस हृदय रोग की चिकित्सा करवाऊं क्योंकि मुझे भय है, कही यह मर्ज़ वढ न जाए. नही तो इसे फिर विधाता भी न मिटा पाएगा।

सच मुच यह रोग हृदय का भी अत्यंत भयानक होता है।
जब लग जाता है किसी मनुज को उसकी सब कल खोता है॥

सुदर्शन—प्रिय मित्र ! यह समय इस प्रकार मेरी बातों को हंसी में डालने का नहीं है। मे सच कहता हूँ, जब से मैंने उस मनोरम रति प्रतिमा के दर्शनीय मुख मंडल को देखा है उसी समय से मेरे हृदय का धैर्य खो रहा है और मेरा मन बेचैन हो रहा है। मित्रवर ! उस की प्राप्ति के बिना मेरा जीवन सर्वथा निःसार सा जान पडता है। अहा ! वह कैसी सुन्दरी रमणी थी—

नवल कमल सम मृदुल सुतनुवारी,

रतिका सुरूप जो स्वरूप से लजाती है।

कोकिल कलित मृदु ललित मधुर शब्द—

सुधा युग अधर पटल से वहाती है॥

उन्नत उरोज काम सर के सरोजवत,

युग दृग मीन द्वारा हृदय चुराता है।

मोहिनी मधुर, शुभ मोहनी सरल छवि,

बार बार नेत्र सम्मुख आ आ जाती है॥

देवदत्त—मित्रवर! मैं आप की अवस्था का अच्छी तरह से अनुभव कर रहा हूँ और जिस के अवलोकन से आप के हृदय में इस प्रकार वेदना उत्पन्न हो रही है उस के विषय में भी मैं पूर्ण रूपेण जानता हूँ। आप अधिक घबड़ाइए नहीं; आप की मनोभिलाषायें अवश्य सफल होंगी।

सुदर्शन—प्रिय मित्र! तब बतलाइए कि मेरे हृदय की यह वेदना कैसे नष्ट हो सक्ती है और वह सुन्दरी मुझे कैसे प्राप्त हो सकती है।

देवदत्त—मित्रवर! आप किसी प्रकार की चिंता न करें। मैं आप की वेदना को भली भांति समझ रहा हूँ। और उस के प्रतिकार का शीघ्र उपाय भी प्रारंभ कर रहा

हूँ। आप विश्वास रखिए आप की मनोकामना शीघ्र सफल होगी और वह सुन्दरी शीघ्र आप की प्रिया होगी !

सुदर्शन—प्रियमित्र ! आप के विश्वास पूर्ण उत्तम वचनो को श्रवणकर मेरे हृदय को अत्यंत शान्ति प्राप्ति हुई है। किन्तु यह अवश्य स्मरण रखिए, कि यदि वह प्राणप्रिया मुझे प्राप्त न होगी तो मेरा जीवन स्थिर नहीं रह सकेगा। अस्तु इस कार्य मे शीघ्र प्रयत्न कीजिए।

देवदत्त—आप निश्चिन्त रहिए. आप का यह कार्य बहुत शीघ्र पूर्ण होगा और आप की समस्त इच्छाएं सफल होंगी। अच्छा ! जाता हूँ।

(प्रस्थान)
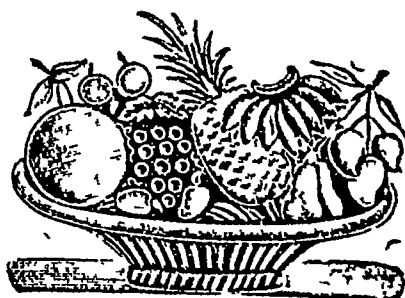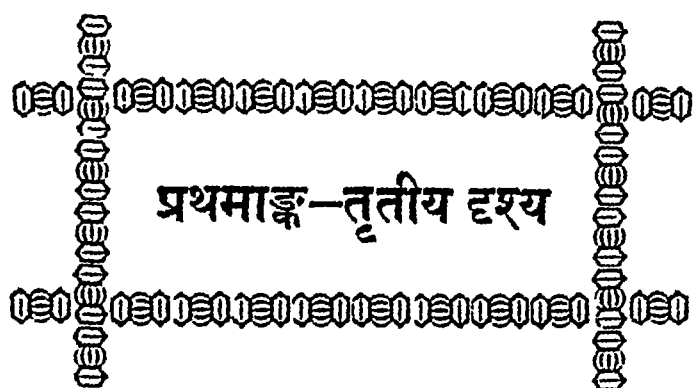
प्रथमाङ्क—तृतीय दृश्य

(स्थान—सागर दत्त श्रेष्ठी का महल; कुमारी सुलोचना अपनी सैय्या पर विकल अवस्था से लेटी हुई विचार कर रही है।)

सुलोचना—(स्वगत) अहा ! उस का मुख मंडल कितना सौन्दर्य पूर्ण था, उस के अवलोकन मात्र से मेरा हृदय कितना विकल हो रहा है और पुनः सम्मिलन के लिए अत्यंत व्यग्र हो रहा है। हा ! कैसे उस कामदेव जैसे स्वरूप वाले कुमार का समागम होता है। उस की सुन्दर मूर्ति मेरे नेत्रों के सम्मुख से नही हटती। (मूर्छित सी हो जाती है।)

(सागरसेना का प्रवेश)

सागर सेना—पुत्री ! भोजन का समय हो चुका; किन्तु तेरी निद्रा अभी तक भंग नही हुई, इस का क्या कारण है। देख कितना सूर्य निकल चुका है और तूने न शैय्या त्याग
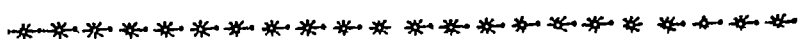
किया और न स्नान ही किया। तेरी इस उदासीनता का क्या कारण है ?

सुलोचना—माता जी ! आज मेरे मस्तक में कुछ कुछ पीडा सी हो रही है इसी कारण मेरा चित्त अस्थिर हो रहा है।

सागरसेना—अच्छा ! तब उठ, स्नान कर और कुछ भोजन कर ले जिस से कुछ शीतलता प्राप्त हो और तेरी यह पीड़ा दूर हो।

सुलोचना—माता जी ! आज मेरी इच्छा भोजन करने की नही है। अतः आज मैं भोजन नहीं करूँगी।

सागरसेना—(सुलोचना का अंग स्पर्श करती हुई) हैं ! यह क्या ? तेरा शरीर इतना क्यो जल रहा है और तेरा मुह इतना मलिन तथा कुम्हलाया हुआ क्यों प्रतीत होता है ?

सुलोचना—माता जी ! कुछ नहीं आज रात्रि मुझे भली प्रकार निद्रा नहीं आई, इसी कारण यह विकार हो रहा है।

सागरसेना—तू तो साधारण विकार कह रही है, किन्तु तेरी दशा अवलोकन कर मुझे तेरे लक्षण अच्छे प्रतीत

नहीं होते। तेरा समस्त शरीर इस प्रकार पीला क्यों हो रहा है। अच्छा अभी वैद्य को बुलाती हूँ।

(अमला का प्रवेश)

क्यों री ! बतला ! इसे क्या हो गया है ? जब से यह उपवन से आई है तभी से मूर्छित सी हो रही है और प्रति पल इस की वेदना बढ रही है। तुम ने इसे क्या कर दिया।

अमला—माताजी ! मुझे तो कुछ भी ज्ञात नहीं है। बाग से तो हम सब अच्छी प्रकार से आई थीं। उस समय तो इन के शरीर में कुछ भी उपद्रव प्रतीत नहीं होता था।

सागरसेना—नहीं तू झूठ बोल रही है, सच सच बतला इस की इस विकलता का क्या कारण है ?

अमला—(स्वयं) मुझे ज्ञात हो गया। इस का कारण वही श्रेष्ठी कुमार है। उसी के रूप जाल में फंसकर इन की यह दशा हो रही है; परन्तु कहे कौन ?

(प्रत्यक्ष में) माता जी ! सचमुच हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है।

सागरसेना—अच्छा जा वैद्यराज जी को बुला ला।

अमला—(स्वयं) सुलोचना के इस काम-ज्वर को वेचारा वैद्य क्या समझेगा और क्या इलाज करेगा। किन्तु मुझे इस से क्या प्रयोजन; मुझे तो इन की आज्ञानुसार कार्य करना। (प्रत्यक्ष में) माता जी जाती हूँ।

(प्रस्थान)

प्रथमाङ्क—चतुर्थ दृश्य
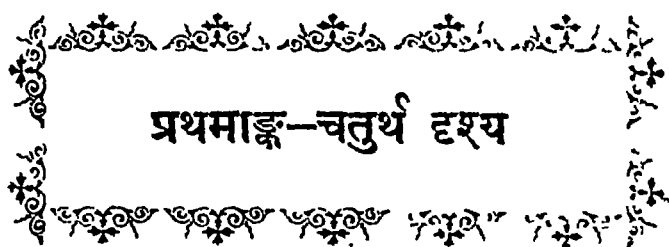
(स्थान—नगर श्रेष्ठी ऋषभदेव का महल, समय संध्याकाल, श्रेष्ठी ऋषभदेव अपनी उच्च अट्टालिका पर विराजमान हैं। समीप ही उन की पत्नी जिनमती बैठी हुई है।)

जिनमती—आर्य ! आज आप का हृदय क्यों किसी अत्यत प्रसन्नता के वेग से परिपूर्ण हो रहा है। प्रति समय आप के निर्मल मुह पर मंद मंद मुस्कुराहट आकर क्यों
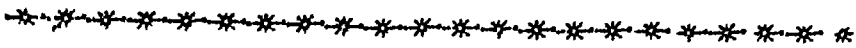
विलीन हो जाती है। किस सुसंवाद ने आप को इस प्रकार आनंद निमग्न कर दिया है।

ऋषभदेव—प्रिये ! एक सुसंवाद है और बहुत ही आनंद प्रद संवाद है ।

जिनमती—देव ! कहिए ! शीघ्र कहिए । मुझे उस के श्रवण करने की बड़ी उत्कंठा हो रही है।

ऋषभदेव—प्रिए ! कुमार सुदर्शन के विवाह की मुझे अत्यंत चिन्ता थी। वह अपना विवाह कराने से सर्वथा असंमत था ।

जिनमती—हां ! यह तो मैं कई वार श्रवण कर चुकी हूं ।

ऋषभदेव—कुमार सुदर्शन ने अपना विवाह कराना स्वीकार कर लिया है ।

जिनमती—स्वीकार कर लिया है ! सो कैसे ?

ऋषभदेव—प्रिये ! आज उसका मित्र देवदत्त मेरे समीप आया था । उस से ज्ञात हुआ है कि कुमार को अपना विवाह कराना स्वीकार है।

जिनमती—तब उस के लिए किसी योग्य कन्या की भी तलाश की ।
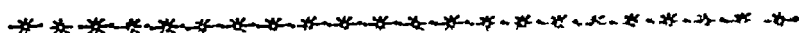
ऋषभदेव—यह सब निश्चित हो चुका है। सागरदत्त श्रेष्ठी की जो सुलोचना नामक सुन्दरी कन्या है उस पर उस का मन आसक्त हो गया है।

जिनमती—तब फिर आप ने इस विषय में श्रेष्ठी सागरदत्त से भी कुछ निश्चय किया।

ऋषभदेव—यह भी निश्चित हो चुका है। उन्हें अपनी कन्या सहर्ष देना स्वीकृत है।

जिनमती—अच्छा तब शीघ्र विवाह की तैय्यारी कीजिए। मैं भी इस कार्य के लिए कितने ही दिनों से उत्सुक थी। आज मेरी इच्छा पूर्ण हुई।

ऋषभदेव—अच्छा चलो! विवाह का आयोजन करें।

(प्रस्थान)
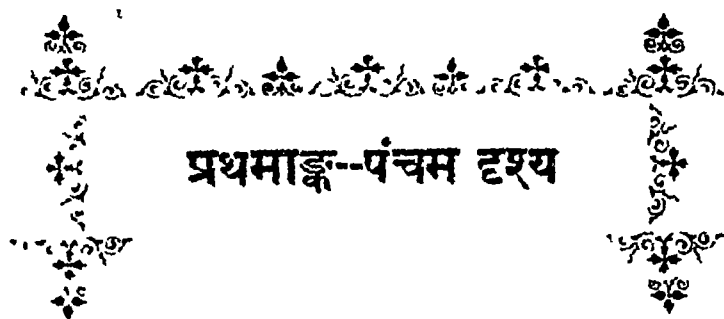
प्रथमाङ्क--पंचम दृश्य

स्थान—सुदर्शन कुमार का विवाह मंडप;
वर वधू दोनों बैठे हुए हैं।

एक नागरिक—(दोनों को देखकर) अहा ! कैसा जोड़ा है—वर भी सुन्दर और कन्या भी सुन्दर।

दूसरा नागरिक—और वय भी दोनों की योग्य है; यह नहीं कि एक हो सत्तर का और एक हो सात की।

तीसरा नागरिक—और दोनों स्वस्थ और संगठित शरीर हैं, यह नहीं कि एक हो मीनार और एक हो गुंबज।

चौथा नागरिक—और दोनों परस्पर योग्य शिक्षा प्राप्त भी हैं; यह नहीं कि एक हो बृहस्पति के समान विद्या विशारद और एक हो अक्षर शून्य।

पांचवाँ नागरिक—और दोनों के हृदय में परस्पर प्रेमानुराग भी है। यह नहीं कि एक कहे कि मुझे गहनों से

मढदो और दूसरा कहे कि सट्टे के लिये प्रथम अपने समस्त गहने दे दो।

पहला नागरिक—अरे भाई ! यह तो सब कुछ अच्छा है, किन्तु विवाह अच्छा नहीं हुआ।

दूसरा नागरिक—हां मै भी तो यही कहता हूँ कि बिलकुल अच्छा नहीं हुआ।

तीसरा नागरिक—हां जी कुछ मालूम ही नहीं हुआ कि विवाह है अथवा किसी सभा का अधिवेशन।

चौथा नागरिक—जी हां! न तो वह रंडियों की सुरीली आवाज़ ही सुनाई दी और न वह आतिशबाज़ी की ही फड़ फड़ाहट।

पांचवा नागरिक—और न फुलवारी ही लुटाई गई और न भांडो की ही चढाई हुई।

पहला नागरिक—किन्तु भाई दान में खूब द्रव्य दिया। संस्थाओं के तो भाग्य ही खुल गए और किसी को एक लाख तो किसी को पचास लाख मिल गए। अच्छा अब कोई एक गीत गाओ।

(सब मिलकर गाते है)
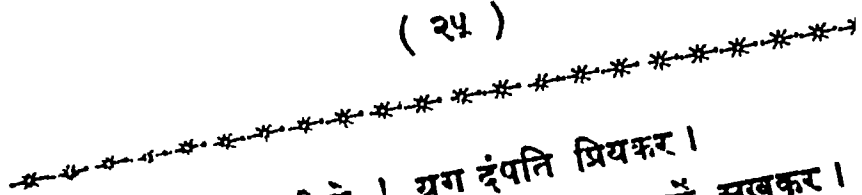
चिरजीवो ! युग दंपति प्रियकर।
प्रेम परस्पर वर्द्धित हो दृढ़ धर्म भावना हों सुखकर।
भारत गौरव गगन चढ़ावें, सत्य कर्म रत हों दृढ़तर॥
सुमति,ज्ञान, सुविवेक बढ़ाकर, करें आत्मउन्नति हितकर
चिरजीवो !' युग दंपति प्रियकर।

(सब जाते हैं)
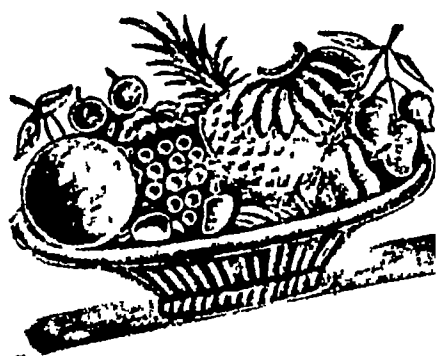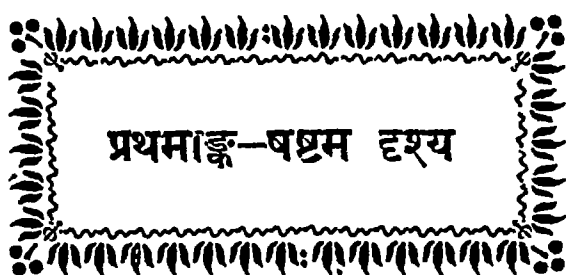
प्रथमाङ्क—षष्ठम दृश्य

समय—प्रभात काल; स्थान—सुदर्शन श्रेष्ठी का निवासस्थान, सुदर्शन श्रेष्ठी अपने निवास स्थान में बैठे हुए हैं।

(ब्र० ज्ञानानन्दजी का प्रवेश)

सुदर्शन—पधारिये महाराज प्रणाम करता हूँ।

ज्ञानानंद—वत्स! धर्म वृद्धि हो! श्रीगुरु के प्रताप से आप का मंगल हो, कहिए कुशल तो है?

सुदर्शन—महाराज आप की अनुकंपा से सब आनन्द मंगल है, कहिए, आज इस दास पर कैसे कृपा की?

ज्ञानानन्द—वत्स! आज मैं विहार करता हुआ इस नगर में आया था, इच्छा हुई श्रेष्ठी कुमार से मिल आऊं।

सुदर्शन—महाराज आपने बड़ी दया की, जो मुझे
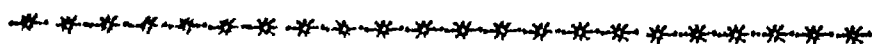
दर्शन देकर कृतार्थ किया। कहिए आज कल मानवों के हृदयों में धर्म के प्रति कैसी श्रद्धा है।

ज्ञानानन्द—वत्स ! वर्तमान में मनुष्यों के हृदयों से धार्मिक श्रद्धा का भाव क्रमशः उठता जा रहा है। वह चारित्र और आत्मोन्नति के मार्ग से बहुत पिछुड़ रहे हैं। विद्वानों में परस्पर द्वेष के लक्षण प्रतीत होते हैं जिस से भविष्य में धर्म के ऊपर पूर्ण आघात पहुँचने की आशंका है—

विद्वान् गण अभिमान के उन्नत शिखर पर चढ़ रहे।
स्वार्थ एवं वासना पथ में धड़ा धड़ बढ़ रहे॥
वित्त के बन दास हा ! कुमति कुगढ़ में पड़ रहे।
द्वेष भाव निमग्न होकर वह परस्पर लड़ रहे॥

सुदर्शन—महाराज ! समाज के यह लक्षण अच्छे नहीं हैं। फिर इस के सुधार का कोई उपाय भी है। आप जैसे महात्माओं के होते हुए भी जब यह असद्भावनाएं नष्ट होकर धर्म की उन्नति नहीं होगी, तब और कब होगी; आप इस द्वेषाग्नि को बुझाइये।

ज्ञानानन्द—वत्स ! आज कल मानवों के हृदय में स्वार्थ और अभिमान की वासना अधिक जागृत हो रही है

-
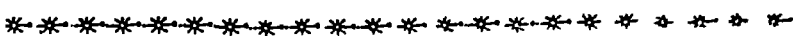
वह अपने स्वार्थ के पीछे धार्मिक क्रियाओं की ओर कब ध्यान देते हैं।

स्वार्थ अपना साध लेते धर्म की वह आड में।
बस काम पूरा होवे चाहे धर्म जाए भाड़ में॥

सुदर्शन—महाराज! इस का क्या कारण है।

ज्ञानानन्द—वत्स! इस का कारण है, केवल मानव समाज में बढ़ी हुई विषय कामना की तीव्र चाह। आज कल मनुष्यों में विषय वासना और इन्द्रिय सुख तृप्ति की अभिलाषा अधिक बढ गई है, उन की इच्छाएं विषय सुखों का सेवन करते हुए भी किंचित् भी तृप्त नहीं होतीं, अस्तु वह उस के पीछे समाज और धर्म के हिताहित का कुछ भी ध्यान नहीं देते।

सुदर्शन—महाराज! इस के अतिरिक्त और भी कुछ कारण है?

ज्ञानानन्द—हां! एक कारण और है, वर्तमान के मनुष्यों में सद्गुणों और सदाचरण की अपेक्षा धन वैभव के प्रति अधिक मान और आदर है। जहां पूर्व समय में गुणों की, गुणवान व्यक्तियों की व सच्चरित्रता की पूजा की जाती थी,
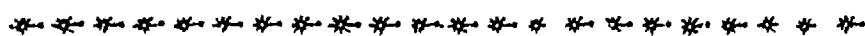
वहाँ आज कल अधिकांश में धन, धनवानों और धन प्राप्ति करने में कुशल व्यक्तियों की पूजा की जाती है।

धन की अपेक्षा सच्चरित्रता का मूल्य कुछ भी नहीं समझा जाता, मनुष्य अपने सदाचरण और सर्व श्रेष्ठ धर्म के बदले में केवल धन की ही उपासना करते हैं, धनवानों की हां में हां मिलाते हैं, उनके अवगुणों को भी सद्गुण बतलाते हैं और उनके अनर्थ कृत्यों को धार्मिक कार्य कहते हैं।

सुदर्शन—महाराज ! तब इस के सुधार का भी कोई उचित उपाय है।

ज्ञानानन्द—हां उपाय तो अवश्य है, किन्तु वर्तमान मनुष्यों का हृदय इतना विषयासक्त और स्वार्थमग्न हो रहा है, कि उपाय करने के लिये क्या, उस के श्रवण करने में भी वह हिचकिचाते हैं।

सुदर्शन—महाराज ! कृपा करके बतलाइए वह क्या उपाय है ?

ज्ञानानन्द—इसका केवल मात्र यही उपाय है, कि मनुष्य अपनी स्वार्थ वासनाओं को कम करदे और बाह्य दिखलावट में, कोरे क्रिया कलाप में न पड़ कर सत्य ज्ञानकी
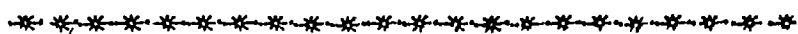
खोज करे और परस्पर सर्व प्राणियों में बन्धुत्व का व्यवहार करे, अपनी आवश्यकताओं को कम करदे और संतोष धारण करे।

सुदर्शन—महाराज! आपका यह उपदेश मानवों के लिये अत्यत हितकारी है। अच्छा, आप मुझे कुछ ऐसा व्रत प्रदान कीजिए जिससे मै गृहस्थावस्था में रहते हुए भी उसका पालन कर सकूँ और अपना आत्मोद्धार कर सकूँ।

ज्ञानानन्द—वत्स! गृहस्थों के लिए सर्व श्रेष्ठ व्रत एक पत्नीव्रत अथवा स्वपत्नी सतोष है, इसका पालन गृहस्थ प्रत्येक अवस्था में कर सक्ता है, एव इसके द्वारा वह अपना आत्मोद्धार भी कर सक्ता है।

इस व्रतसे विषयेच्छाए सीमित हो जाती है, मन शान्त हो जाता है और वह समाज के बहुत से पापों से बचसक्ता है।

तेज अङ्कुश से कहीं गज भागने पाता नहीं।
मन कहीं इस व्रत के द्वारा है अहो जाता नहीं॥

सुदर्शन—अच्छा महाराज! मै आपके समक्ष इस व्रतको ग्रहण करता हूँ और प्रतिज्ञा करता हूँ, कि आजन्म पर्यन्त यह स्वपत्नी सतोष व्रत धारण करूँगा। चाहे मेरे
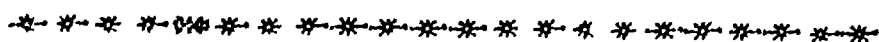
ऊपर कितनी ही आपत्तिएं क्यों न आवें, मेरी मृत्यु ही क्यों न होती हो, किन्तु मैं इस श्रेष्ठ व्रतको अवश्य रक्षित रक्खूँगा !

सूर्य हो शीतल तथा शशि बिंब दाहक हो अगर ।
मेरु विचलित हो, नहीं होऊंगा विचलित मैं मगर ॥
अनल चाहे उष्णता गुण अपना बेशक छोड़ दे ।
यह नहीं होगा सुदर्शन सत्य से मुंह मोड़ दे ॥

ज्ञानानन्द—वत्स ! धन्य हो, तुमने यह व्रत ग्रहण कर अपने योग्य ही कार्य किया है, मैं आशीर्वाद देता हूँ तुम अपने व्रत में सफल हो ।

(प्रस्थान)

प्रथमाङ्क—सप्तम दृश्य

स्थान-रुद्रदत्त पुरोहित का मकान, रुद्रदत्त
अपने मकान के कमरे में बैठे हुए हैं।

(सुदर्शन का प्रवेश)

रुद्रदत्त—(सुदर्शन को आते हुए अवलोकन कर) आइए मित्रवर्य्य! आज अधिक समय पश्चात् आप के दर्शन प्राप्त हुए। बंधुवर्य्य आप को देखकर मेरा हृदय प्रेम और आनन्द से परिप्लुत हो जाता है।

सुदर्शन—प्रियवर! सच्ची मित्रता का लक्षण तो यही है। जहां हृदय मे सत्य स्नेह होता है, वहां आनन्द भी प्राप्त होता ही है। किसी कविने कहा भी है।

हृदयस्तल में सत्यप्रेम का भाव उदित जब होता है।
स्वाभाविक सनेह सरिता में लय हो खाता गोता है॥
दर्शन, स्पर्शन, संभाषण द्वारा हर्ष स्रोत बहता।
तथा परस्पर मिलन आदि से सत्य स्नेह सुधा घुलता॥

रुद्रदत्त—सुहृद्वर्य्य ! मुझे यह स्मरण करते अत्यन्त हर्ष होता है कि मुझे आप जैसे सुहृद और सच्चे हित चिन्तक मित्र प्राप्त हैं ... ...

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—अन्यथा आज कल तो केवल स्वार्थ साधन के लिए ही यार लोग मित्रता का जाल बिछाते हैं और भोले भालों को फंसाते हैं।

सुदर्शन—किन्तु हम लोगों का सत्यस्नेह इस प्रकार स्वार्थ कालिमा से कलंकित नहीं है।

विदूषक—जी हां ! नहीं तो प्रायः देखा जाता है कि आज कल की मित्रमण्डली अत्यन्त दूषित हो रही है। स्वार्थी मानव मित्र के नाम को कलंकित कर रहे हैं। कोई बनावटी मित्र नाम धारक शत्रु तो अपने धनिक मित्रों की हां में हां मिलाते हैं और उन्हें कुत्सित पाप पथ में ले जाते हैं;उन्हें वेश्या सेवन, शराबपान आदि कुव्यसनों में फंसाते हैं। आप ख़ूब माल उड़ाते हैं और उन्हें पथ २ का भिखारी बनाते हैं तथा पूर्वजों की कीर्ति में धब्बा लगाते हैं।

रुद्रदत्त—क्या यह भी सच है ?

-
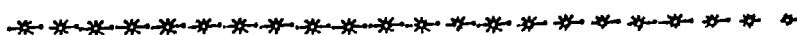
विदूषक—जी हां ! और कोई मित्र बन कर भोले भाले नवयुवकों को फँसाते हैं, उन्हें मीठी बातों में फुसलाते हैं और उन के हितचिन्तक मित्र बनकर फैशन का भूत उनके सिर पर चढ़ाते हैं। ऐश आराम के दिखावटी रास्ते पर ले जाते हैं और तरह २ के रङ्ग महल दिखाकर, लाला साहिब और बाबू बनाकर उन का सर्वनाश कराते हैं।

सुदर्शन—वाहजी वाह ! कहीं वह भी मित्र कहलाते हैं।

विदूषक—अजी और भी तो सुनिए ! कोई मित्र ऐसे होते हैं जो किसी की सुन्दर स्त्री अथवा भगिनी को देख कर उस पर आसक्त हो जाते हैं और फिर वह उनके कुटुम्बियों से मित्रता बढ़ाते हैं, तब फिर व्यभिचार का रोग लगाते हैं। इस प्रकार अपनी घृणित इच्छाओं को पूर्ण करते हुए मित्रता निभाते हैं।

रुद्रदत्त—(सुदर्शन की ओर देख कर) मित्रवर्य्य ! इन का कथन यदि सर्वथा सत्य है, तो ऐसे मित्रगण यद्यपि प्रत्यक्ष में मित्र सदृश प्रतीत होते हैं, किन्तु भविष्य में वह भीषण शत्रु से भी अधिक भयंकर होते हैं। (रुक कर) हाँ मित्र मुझे ज्ञात हुआ है कि आप ने कोई व्रत धारण किया है

-

और आज तक मुझे विदित नहीं किया। कहिये उसे इस प्रकार क्यों छुपा रक्खा है?

सुदर्शन—नहीं मित्रवर्य! भला मित्रसे भी कोई छिपाने योग्य गुप्त वार्ता हो सकती है! मै आपसे इसी विषय में कहने के लिए आज आया था, किन्तु मैं देखता हूँ कि आप उसे प्रथम ही श्रवण कर चुके है।

रुद्रदत्त — मित्रवर्य्य! आपने उक्त कठिन प्रतिज्ञा कर के बड़े भारी साहस का कार्य किया है; मेरी हार्दिक भावना है कि आप अपने प्रण पालन में सफल हों।

सुदर्शन—यह श्री गुरुदेव की कृपा है, अन्यथा मुझ में क्या शक्ति थी? अच्छा मित्रवर अब आज्ञा दीजिये।

(प्रस्थान)

(सुदर्शन जाता है, इसी समय पुरोहित पत्नी किसी कार्य वशात् द्वार पर आती है। वह सुदर्शन को देखकर लज्जित सी होकर पीछे हट जाती है और कुमार की सुन्दर मूर्ति देखकर उन पर मोहित हो जाती है।)

(पटाक्षेप)
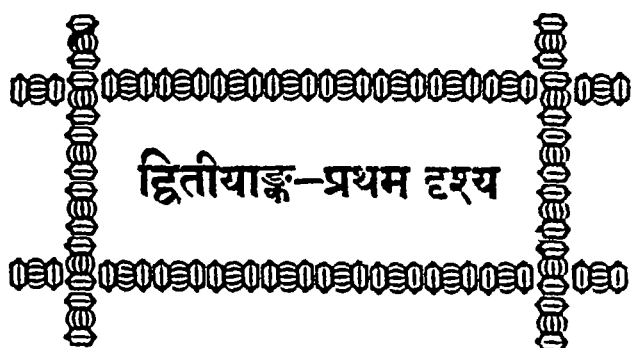
द्वितीयाङ्क—प्रथम दृश्य

स्थान—रुद्रदत्त पुरोहित का मकान, पुरोहित
पत्नी कपिला उदास भाव से किसी घोर
चिन्ता में निमग्न हुई सैय्या पर
लेटी कुछ विचार कर रही है।

कपिला—(स्वगत) हा! जबसे मैंने उस मन मोहन का दर्शन किया है तब से ही मेरा हृदय मदन की तीव्र ज्वाला मे जल रहा है, मैं कितने ही प्रयत्न करती हूं किन्तु मेरे शरीर की दाह किंचित् भी शान्त नहीं होती। जो चन्द्रमा की शान्त किरणें मेरे हृदय को शीतलता पहुंचाती थीं, आज मेरे समस्त शरीर में तीव्र दाह पहुंचाती हैं। यह शीतल चन्दन का लेप मेरे शरीर को अत्यन्त दग्धित कर रहा है। हा! कैसे उस हृदय हारिणी मूर्ति का पुनः दर्शन करूं और हृदय की तीव्र ज्वाला को शान्त करूं—
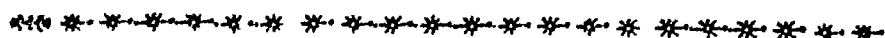
शीतल किरणें चन्द्र की देतीं अतिशय ताप।
चन्दन चर्चन से अधिक बढ़ता है अनुताप॥
बढ़ता है अनुताप व्यथा द्विगुणित होती है।
आह! चाह की तीव्र दाह सद्बुधि खोती है॥
प्रेम प्यास है अमित बढ़ी कब तक हा चरणें।
नहीं शान्ति देती हैं शशि की शीतल किरणें॥

(यमुना का प्रवेश)

यमुना—देवी! आज आपकी यह कैसी अवस्था हो रही है। समस्त शरीर शिथिल और कुम्हलाया हुआ है। मुँह से दीर्घ श्वासोश्वास निकल रही है। कहिए! किस दारुण वेदना से आपका हृदय व्यथित हो रहा है?

कपिला—यमुना! मैं अपने हृदय की वेदना तुझे कैसे बतलाऊँ, मैं जिस तीव्र ज्वाला में जल रही हूँ उसका ज्ञान तुझे कैसे कराऊँ। यमुना! तू मेरी हृदय वेदना को क्या समझेगी? (दीर्घ निःश्वास लेती है)

यमुना—देवी! मैं आपको अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करती हूँ, आपके हृदय की वेदना अवलोकन करते हुए मेरा मन तीव्र दुःख से जला जा रहा है, आप अपने हृदयकी
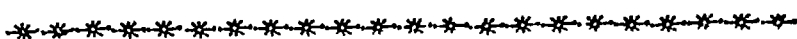
-*-

वेदना को निःसकोच रूपसे मुझे विदित कीजिए, मै उसके निवारण करने का पूर्णतः प्रयन्न करूंगी ।

कपिला—तब क्या यह सच है, कि तू मेरे इस असाध्य रोग की औषधि मुझे प्राप्त करा देगी, क्या मै विश्वास करूँ कि तू मेरी हृदय वेदना शमन करा देगी ?

यमुना—हाँ आप मुझसे विदित कीजिए मै यथा साध्य उसके नष्ट करने का उपाय करूँगी ।

कपिला—हाय यमुना ! मैंने जब से उस मदनकुमार सुदर्शन की सुन्दर, सरल और मनोहारिणी मूर्तिका अवलोकन किया है, तबसे ही मेरा हृदय मदन के पंचबाणों से बुरी तरह विदीर्ण हो रहा है । उसके विरह की तीव्र ज्वाला में मेरा समस्त शरीर भस्म हो रहा है । उसके पुनः दर्शन किए बिना मेरे हृदय को एक क्षण मात्र भी चैन नहीं पडती अस्तु हे प्रिये ! यदि तू मेरे हृदय की वेदना को शान्त करना चाहती है और यदि मुझे जीवित देखना चाहती है तो शीघ्र किसी प्रयत्न से उस हृदय विमोहन से मुझे मिला दे ।

यमुना—देवी ! आप यह क्या कह रही है । क्यों इस प्रकार पाप पथमें प्रवेश करने का प्रयत्न कर रही है । देवी !

—

यह कृत्य अत्यन्त घृणित और लोकनिंद्य है, आप क्यों इस कुकृत्य की कीचड़ में फँस रही हैं। आपको यह बात ज्ञात होगी कि वह सुदर्शन कुमार परमधार्मिक और सच्चरित्र है, उसका प्राप्त होना दुःसाध्य है। अस्तु, आप इस पापपूर्ण विचारों को अपने मनसे हटाइए और पवित्र पातिव्रतधर्म से अपना हृदय सजाइए।

कपिला—प्यारी यमुना! मैं यह सब कुछ जानती हूँ और हृदय को निरंतर धैर्य बंधाती हूँ, किन्तु वह उसका प्रकाश पूर्ण प्रतिबिंब मेरे सन्मुख आकर मेरे धैर्य के बाँधको नष्ट भ्रष्ट कर मुझे अगाध प्रेम सागर की ओर खींचे लिए जाता है और मेरा मन उसमें डुबकिएं लगाने लगता है। मेरा हृदय बलात् उसके आलिङ्गन के लिये व्याकुल हो उठता है और उसके प्राप्त न होने पर दुःखकी तीव्र तरंगों में गोते मारने लगता है। उसके संयोग बिना मेरा जीवन स्थित रहना असंभव सा प्रतीत हो रहा है। अस्तु, मैं तुझसे प्रार्थना करती हूँ कि तू मुझे एक बार उस मेरे हृदय उपासक से मिला कर ....

यमुना—देवी! आप पुनः विचार कीजिए; इस अग्नि में पड़ने से आपके हृदय की ज्वाला शान्त नहीं हो सक्ती,
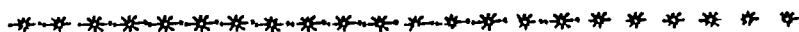
किन्तु कुपथ्य भोजन की सदृश आपकी यह व्याधि भीषणरूप धारण कर दुगुणित वेदना बढायेगी, अस्तु, मै आपसे पुनः निवेदन करती हूँ, कि आप इस भीषण दावानल में पडने से अपने आपको बचाइए ।

कपिला—प्रिये ! तेरे इस कर्णकटु वार्तालाप से मुझे किंचित् शांति नही मिलती. यदि तू मेरी हितचिंतना चाहती है तो शीघ्र उस मेरे हृदय विमोहन से मुझे मिला अन्यथा मेरे प्राण विसर्जन में कोई विलंब नही है ।

यमुना—अच्छा देवी ! आप धैर्य धारण कीजिए । यद्यपि कार्य अत्यंत दुःसाध्य है, किन्तु मैं आपको प्रथम वचन देचुकी हूँ, द्वितीय आपकी आज्ञा पालन करना मेरा कर्तव्य है अस्तु, मै इसके लिए प्रयत्न करती हूँ और उस तेरे प्राणप्रिय से तुझे मिलाती हूँ ।

(प्रस्थान)

द्वितीय अङ्क—द्वितीय दृश्य
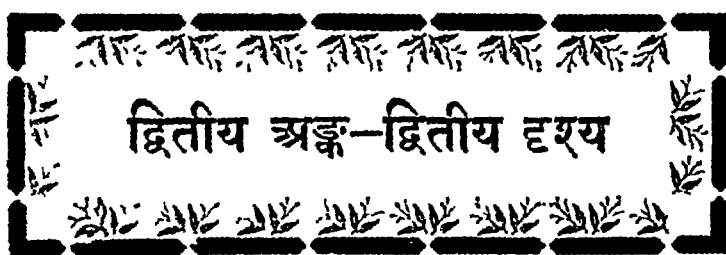
स्थान—रुद्रदत्त पुरोहित का मकान; कपिला चादर ओढे हुए सैय्या पर लेटी हुई है। पास ही एक सुन्दर कुरसी रक्खी हुई है।

(यमुना का सुदर्शन कुमार के साथ २ प्रवेश)

यमुना—(सुदर्शन से) देव ! चलिए, उस कमरे में पधारिये (कपिला की शय्या दिखला कर) देखिये ! वह आप के मित्र रुग्णावस्था में लेटे हुए हैं।

(प्रस्थान)

(सुदर्शन कमरे में प्रवेश करते हैं कुरसी पर बैठकर)

सुदर्शन—कहिए मित्र ! आप किस रोग से ग्रस्त हैं ? मुझे अत्यन्त खेद है कि आप की अस्वस्थता का समाचार ज्ञात न होने से उपस्थित नहीं हो सका (चादर हटाकर और अपने मित्र के स्थान में पुरोहित पत्नीको देखकर आश्चर्य

से) हैं ! यह क्या ? यह तो मेरे मित्र नहीं है,किन्तु एक सुन्दर रमणी है। (कुरसी से उठना चाहता है)

कपिला—(उन्हें बैठाती हुई) प्रियवर ! आप चोंकिए नहीं। आज मेरे अत्यन्त सौभाग्य का समय है जो मुझ तृषित चकोरी को चन्द्र दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ मेरे तृषित हृदय में अमृत रस का आकर्षण हुआ। अहा ! आज मेरे कितने सौभाग्य का दिवस है कि जिस मन मोहिनी मूर्ति की आज पर्यन्त हृदय मन्दिर में उपासना कर रही थी, वही दिव्य मूर्ति आज मेरे सम्मुख उपस्थित है। प्यारे ! अब आप अपने मधु मिश्रित मनोहर शब्दों द्वारा मेरे कर्ण कोनो को तृप्त करते हुए मेरी चिर हृदय अभिलाषा पूर्ण कीजिये।

सुदर्शन—हे आर्य ! आप इस प्रकार लज्जा हीन हो कर मेरे लिये किन शब्दों का प्रयोग कर रही है। आप मेरे परम प्रिय मित्र की भार्या है; अस्तु आप मेरी भगिनी सदृश है। आप को इस प्रकार कुत्सित वाक्यों को अपने मुख पर नहींलाना चाहिये। देवी ! मुझे शीघ्र बतलाइए, मेरे प्रिय मित्र कहाँ हैं। मेरा हृदय उन को अस्वस्थता का संवाद श्रवण कर अत्यन्त दुखित हो रहा है। अतः मैं उन का शीघ्र दर्शन करना चाहता हूँ।

——* *—*—*—* * *—*—*—*—* *—*—*—*—*—*—*—*
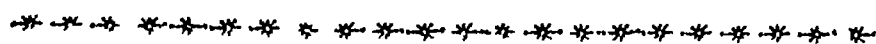
कपिला—ध्यारे ! यहाँ आप के मित्र नही है और न वह अस्वस्थ ही है, किन्तु मैं ही हृदय मे लगी हुई आप की दारुण विरह वेदना से जल रही हूँ। अस्तु मेरी वेदना शमन करने का शीघ्र इलाज कीजिए।

मदन की तीव्र ज्वाला से हृदय है जल रहा प्रियवर।
शमन कीजे उसे मोहन दृढ़ालिंगन मुझे देकर ॥

दयावन ! यह दुष्ट मदन अपने पंच बाणों से मेरा हृदय विदीर्ण कर रहा है, उस को कठिन वेदना से व्याकुल होकर मे आप को शरणागत आई हूँ; अस्तु आप अपने दृढ़ आलिंगन द्वारा उस दुष्ट को नष्ट कर मेरी रक्षा कीजिए।

सुदर्शन—देवी ! तुम्हारे मुंह से इस प्रकार घृणित और पाप पूर्ण शब्द कैसे निकल रहे है, इस का मुझे बड़ा आश्चर्य है। आर्ये ! इस मदन के नष्ट करने का सर्व श्रेष्ठ उपाय यही है कि शरण वत्सल शीलदेव के अमोघ शस्त्रों से अपने शरीर को भूषित कर लीजिए, फिर यह मदन राक्षस आप की कुछ भी हानि नहीं कर सकेगा। इस का प्रताप अन्धकार तो तभी तक रहता है जब तक इसे पातिव्रत रूपी तीक्ष्ण सूर्य किरणों का दर्शन नही होता है। अस्तु देवी ! सावधान हो अपने रमणी रत्न को सम्हालो।
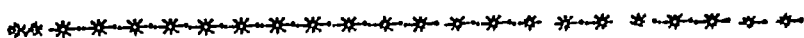
कपिला—हा प्राणनाथ ! यह दुष्ट मेरे शील रूप दुर्ग को अपने तीक्ष्ण बाणों से प्रथम ही नष्ट भ्रष्ट कर चुका है और मेरी लज्जा पताका को छीन कर सद्ज्ञान रथ से मुझे पतित कर चुका है। अस्तु, अब मेरी रक्षा का उपाय केवल मात्र यही है, कि आप अपने रमणीय विषय विलास द्वारा इस का साम्राज्य नष्ट कीजिए और मेरे हृदय की तीव्र वेदना कम कीजिए।

सुदर्शन—हे अविचार पथगता रमणी ! इस प्रकार घृणित विचार अपने हृदय में मत भर तथा अपने पवित्र नारी जन्म को कलंकित मत कर। अपने हृदय मे सद्विचार का अलौकिक प्रकाश विकाश कर और इस अज्ञान अन्धकार में छिपे हुए कामदेव का पवित्रता की अमोघशक्ति द्वारा शीघ्र नाश कर। स्मरण रख—

यह मनुज का जन्म दुर्लभ सर्वदा मिलता नहीं।
कलंकित करने इसे तैय्यार क्यों तू हो रही॥
तीक्ष्ण कंटक फल स्वपथ में वो रही क्यों कामिनी।
सर्वस्व करती नष्ट क्यों तू ऐ विषय अनुगामिनी॥

कपिला—हा प्राण प्यारे ! आप यह किसे समझा

रहे हैं, किस प्रकार शब्दों के तार ओस कणों द्वारा हृदय की तीव्र प्यास बुझा रहे हैं ? नाथ ! रहने दीजिए, वृद्धावस्था के समय में देने योग्य इस थोथे ज्ञानोपदेश को रहने दीजिए। अब तो यौवन की प्रबल तरङ्ग में रति की मधुर उमंग सहित प्रणयधार प्रवाहित कीजिए. एवं सरस, मधुर रमणीय मोहिनी मदिरा से लबालब भरे हुए इस प्रेमप्याले को पीजिये और अपने पूर्ण प्रेम का परिचय दीजिए—

डाल दीजे हां गले में मंजु कोमल हाथ अब।
स्वर्गीय भोग विलास कीजे नाथ ! मेरे साथ अब॥
प्राण प्यारे नेत्र तारे अब सहा जाता नहीं।
दृढ़ालिंगन के विना मुझ से रहा जाता नहीं॥

सुदर्शन—हे रमणी ! तू अपने इस निंदनीय व्यवहार द्वारा प्रेम शब्द को कलंकित मत कर। प्रेम ! वह पवित्र शब्द है जिस से हृदय में पवित्रता की तरङ्गें उमडने लगती हैं। प्रेम वह मन्त्र है जिस में वासना और विलास की भावनाएं विलीन हो जाती हैं। प्रेम वह वस्तु है जिस के द्वारा मनुष्य ईश्वर के साक्षात् दर्शन कर पूर्ण सुख और शान्ति के स्थान में पदार्पण करता है। तुम उस पवित्र शब्द का इस प्रकार क्यों गला घोंट रही हो ? इस प्रकार अश्लीलता द्वारा उस

प्रेम शब्द को क्यों कलंकित कर रही हो। अगर तुम्हें प्रेम ही करना है तो उस सर्व श्रेष्ठ धर्म से प्रेम करो, उस विश्व वंदनीय ईश्वर से प्रेम करो जिस से यह नारी जन्म कृतार्थ हो जाय और पूर्ण सुख शान्ति की अविरल धारा बह जाए।

कपिला—प्रियतम! इस प्रकार धार्मिक उपदेश देने के लिये मैंने आपको यहां नहीं बुलाया है। मैं आपके स्निग्ध कोमल और दृढ़ स्पर्शन द्वारा सुखी होना चाहती हूँ। अस्तु आप मुझे अपने चिर विलास द्वारा सुखी बनाइए।

सुदर्शन—हे विषयानुरागरता महिला! सुख शब्द का उच्चारण करना जितना सहज है उतना ही उसका प्राप्त होना कठिन है। विषयों की पूर्ति करना सुख नहीं है, यह सुख तो अपने गर्भ में भयानक आपत्तिए और असीम कष्ट धारण करता है। पाप कर्म के द्वारा कभी सुख प्राप्त नहीं हो सकता, किन्तु यह तीव्र दुःख की धारा में बहा ले जाता है। यह सुख तो केवल मन की कल्पना है। हम इसके द्वारा अपने मन को सुखी समझते हैं बस इसही लिए हमने इसे सुख मान लिया है, किन्तु यह सुख उस दुःख का भयंकर रूप है, जिसका अनुभव करते हुए हृदय भय से कंपित हो उठता है।

अस्तु आप हृदय से यह कुभावनाएं शीघ्र हटाइये और अपने पातिव्रत धर्म पर निश्चल रहिए ।

कपिला—प्राणनाथ ! मैं आप के मुह से धर्म की बात कई बार श्रवण कर चुकी, किन्तु मुझे ज्ञान नहीं होता कि धर्म क्या वस्तु है ? यदि कुछ समय के लिए मान लो कि अपने शरीर को तरह २ के कष्ट देकर और वर्तमान सुखों से वंचित रखकर धर्म के द्वारा परलोक में सुख प्राप्त होगा इस इच्छा से शरीर को अनेक यातनाएं दीं किन्तु अन्त में भी उसी सुख का ही प्रश्न उपस्थित रहा, तब फिर भविष्य के ऐसे सुखों की इच्छा करके जो अनिश्चित हैं, जिन के विषय में हम कुछ जान ही नहीं सकते, वर्तमान सुखों का त्याग करना बिल्कुल मूर्खता है । अस्तु आप मुझे ग्रहण कीजिए और इस मेरे अपूर्व यौवन और जीवन को सफल कीजिये ।

(आलिङ्गन करने को सुदर्शन कुमार की ओर अग्रसर होती है)

सुदर्शन—(स्वगत) यह कामदेव के मद में मदोन्मत्त हुई रमणी इस प्रकार उपदेशों के आगे नहीं मानेगी; अस्तु इसके साथ कपट पूर्ण व्यवहार करना पड़ेगा (प्रत्यक्ष में पीछे हट कर) हैं ! आप यह क्या कर रही है, क्यों इस प्रकार
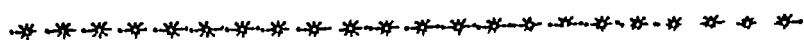
काम की कराल कीचड में पड रही है ? स्मरण रखिये ! आप का यह समस्त प्रयत्न निष्फल होगा. क्योंकि आप शुष्क और निःसार, सुगन्ध रहित सेमर पुष्प को पकड रही है, जिस के द्वारा आपका किंचित् भी मनोरथ सफल नहीं होगा, किन्तु आप का हृदय उलटा और विकल होगा !

कपिला—क्यों ! यह क्यों ! क्या इस मोहिनी लता का इस मधुर मोहक सुगन्ध राशि से मुग्ध करने वाले कामदेव पादप से अलङ्कृत होना सुखवर्द्धक नहीं होगा ! इस तृषित चकोरी को आप के मुख चन्द्र का स्पर्शन प्रेमाकर्षक नहीं होगा ! होगा ! अवश्य होगा !!

(पुनः आलिंगन को बढती है)

सुदर्शन—(बीच में रोककर) किन्तु, जिसे तू सुन्दर अनंग रसयुक्त सुन्दरता पूर्ण पादप समझ रही है, वह कामदेव की कृपा से सर्वदा मुक्त है, किन्तु तीक्ष्ण निःसार कण्टकों से युक्त है। जिसे तू शान्ति प्रदायक चन्द्र बिंब समझ रही है, वह राहु के कठिन ग्रास संयुक्त हैं।

कपिला—(उत्सुकता से) अर्थात् !

सुदर्शन—अर्थात् ! यह पुरुषत्व विहीन, भोगवि-

लास की शक्ति से हीन केवल एक सजीव पुरुष की मूर्ति है जिस में न रतिदान देने की शक्ति व्यक्त है और न मदन की स्फूर्ति है।

कपिला—(आश्चर्य से) क्या वास्तव में यह सत्य है ? नहीं ! मुझे विश्वास नही होता। प्यारे मदन आप मुझे धोका दे रहे है, आप मुझे वाक्य जाल में भुलाना चाहते हैं। नहीं, कदापि नही । आप की इन चालों का असर मेरे ऊपर नही पड़ने का। मैं आप को इस प्रकार कभी नहीं छोड़ने की।

सुदर्शन—क्यों ! तुम्हें मेरी बात पर अविश्वास है ! क्या तुम्हारी समझ में अभी तक नही आया, कि जिस रमणी के दिव्य रूपराशि ने, उन्मत्त लीला विलास ने, तीक्ष्ण और कुटिल कटाक्षो ने, स्निग्ध और मधुर स्पर्श ने देवताओं के हृदयों को विचलित कर दिया, ब्रह्मा के व्रत को भंग कर दिया, विष्णु को अपना दास बना लिया और महर्षियों की तपस्या को नष्ट कर डाला, उस का इस एक साधारण व्यक्ति पर प्रभाव न पड़ता। उस के हृदय में तीव्र काम की दाह उत्पन्न नही होती । मेरे नपुंसक होने का इस से अधिक प्रमाण आप और क्या चाहती है।
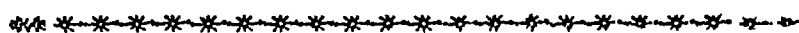
कपिला—(पीछे हटकर पश्चात्ताप के स्वर में) हा ! तब मैंने व्यर्थ ही अपने हृदय को कलंकित किया और अपने समय को नष्ट किया।

(निराशता पूर्वक अपने पलंग पर बैठ जाती है। सुदर्शन का प्रस्थान।)

तृतीयाङ्क—प्रथम दृश्य
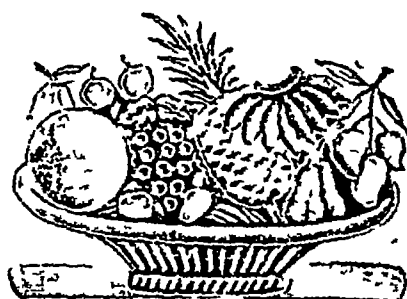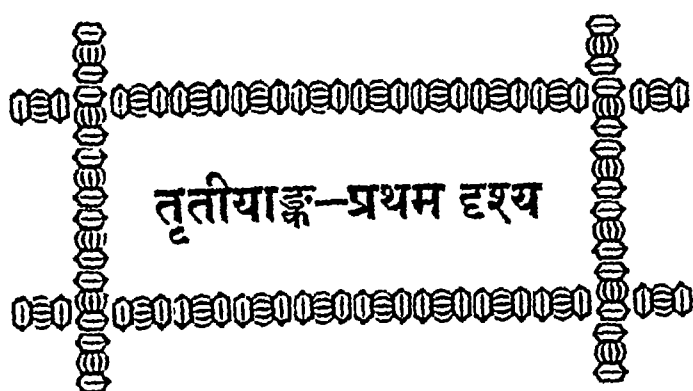
स्थान—विषयानन्द की बैठक; विषयानन्द अपने समीप बैठे हुए कई मित्रों से वार्तालाप कर रहा है ।

विषयानन्द—(मित्रों की ओर देख कर)

कौन कहता है मुहब्बत में मज़ा आता नहीं ।
भोली सूरत पर है मन किसका चला जाता नहीं ॥
ज़िन्दगी है ऐश औ आराम के ही वास्ते ।
उनका जीवन व्यर्थ जिनको यह मज़ा भाता नहीं ॥

हां ! यदि इस दुनियामें भोग विलास का यह सामान न होता, तो यहां किसके लिए जीने का अरमान होता । अगर यह भोली २ सूरतें, शीशे में ढली हुई, नज़ाकत से भरी हुई

*-

मूरतें, हुस्न से पुर नूर न होतीं, तो जीते हुए भी मौत ज़ुरूर ज़ुरूर होती।

क्यों दोस्त! वह कैसा चांद का टुकडा है,जिसने मेरे मन को अपनी रूपकी रस्सी से पकडा है।

मायानन्द—वेशक दोस्त! आपका कहना विलकुल ठीक है।

ज़िंदगी के वास्ते वस हुस्न की दरकार है।
हर जगह हमको वही वस इश्क़ की सरकार है॥
जिस तरह भौंरों को हरगिज़ एक गुल भाता नहीं।
चकले में जाए विना हमको मजा आता नहीं॥

जवानी अगर मिली है,दौलत अगर पास है तो हुस्न की ख़रीदारी क्यों न कीजाए। कौन सुदर्शन की तरह अपने को हिजडा बनलाए और चांद सी सूरत को अपने हाथ से गंवाए।

दुर्गतानन्द—वाह! दोस्त वाह! ख़ूब कहा—

कर मज़ा दुनियां की ग़ाफ़िल ज़िन्दगानी कब तलक।
ज़िन्दगानी भी रही तो तौ जवानी कब तलक॥

यह मनहूसों की बातें हैं जो धर्म २ चिल्लाते हैं, सुवह शाम मसजिदों और मन्दिरों में जाकर सिर झुकाते हैं। अपने
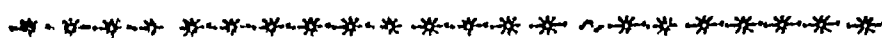
लिए तो यार हसीनों का मकान ही मन्दिर है और हसीन ही हमारे देवता हैं, और माशूकपन ही हमारा धर्म है। वह लोग सख्त बेवकूफ़ हैं जो परलोक के लिए अपनी कंचन सी काया को ग़ममें डालते हैं और अपनी सूरत को बिगाड़ते हैं।

विषयानन्द—बेशक दोस्त!

देखा जो हुस्न यार का तबियत मचल पड़ी।
आँखों का था क़सूर छुरी दिल में चल पड़ी॥

यार! आज हमने भी एक अच्छा माल फँसाया है जिसको देखकर हूर भी शरमाया है, मगर वह किसी तरह मेरी तरफ़ मंजूर नहीं होती, हज़ारों बार समझाया लेकिन वह मेरी मुहब्बत से पुरनूर नहीं होती।

मायानन्द—यार तुमभी बड़े उस्ताद निकले, यारों को भुलाकर ही ऐसा माल जा निगले। मगर जब उसने आपका गला दबाया, तब आज आपको यह रोना आया।

विषयानन्द—नहीं दोस्त! ऐसी बात नहीं है। मेरे फंदे से अब यह निकल नहीं सकती, ऐसा नहीं हो सक्ता कि वह मेरी लंबी चौड़ी बातों में न आए।
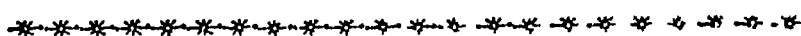
दुर्गतानन्द—मुझे तो मालूम होता है, कि कहीं वह हाथ से न निकल जाए।

विषयानन्द—नहीं जी! आज मैं फिर उसके पास जाता हूँ और उसे समझा बुझाकर अपनी प्राणप्यारी बनाता हूँ।

मायानन्द—अच्छा दोस्त! अब हम लोग जाते हैं, आप उस को समझाइए और अपने फंदे में फंसाइए।

(सब का प्रस्थान; विषयानन्द अपनी बैठक में अकेला रह जाता है। इसी समय एक वृद्धा अपने साथ एक बालिका को लाती है और उसे वहां अकेली छोड कर चली जाती है।)

विषयानन्द—(सुन्दरी से) क्यों प्यारी! अब भी यह तुम्हारी धर्म धर्म की खुमारी नहीं हटती और यह हमारी बेकरारी भी नही घटती। बस अब बहुत समय हो चुका और तुम्हारा हठ भी पूरा हो चुका अब तो इस अपने चाहने वाले को प्यार की दृष्टि से देखो।

सुन्दरी—देखो जी! आप मुझे व्यर्थ तंग न कीजिए और इस अबला अनाथिनी को अधिक दुःख मत दीजिए।

-

एक बार नहीं मैं हज़ार बार कह चुकी कि मैं अपने प्रण से तनिक भी नहीं डिगूंगी ? चाहे अपना प्राण त्याग दूंगी।

विषयानन्द—ओहहो ! प्राण क्या इतनी कम क़ीमत की चीज है जो आप उसे इस प्रकार देने बैठी हैं; अच्छा अगर आप को प्राण देना ही है तो मुझे ही क्यों न समर्पण कर दीजिए जिस से मेरे प्राणों में प्राण आजाएगा और आप का प्राण भी कहीं नहीं जायेगा।

सुन्दरी—रे पापी ! बस ! बस ! तू अपनी ज़बान को बन्द कर और अब आगे एक शब्द भी मत कह, नहीं तो अभी तू अपने किये का मज़ा पा जायगा। यह याद रख कि सती के तेज से तू अभी जल जायगा।

मायानन्द—अच्छा सुन्दरी ! तू इस प्रकार से नहीं मानेगी। जब कुछ दिनों तक खाने पीने को नहीं पायगी तब तू अपने आप ठिकाने आजायगी।

सुन्दरी—रे दुष्ट ! इस प्रकार भय दिखाकर तू मुझे सत्य पथ से नहीं डिगा सकता। तू समझता होगा, कि मैं आपत्तियों के भय से अपने धर्म को छोड़ दूंगी, किन्तु यह
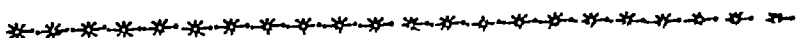
*-

याद रख ! चाहे मेरे शरीर के टुकडे २ हो जाएं, परन्तु मैं अपना धर्म हरगिज नही छोड़ने की ।

विषयानन्द—अच्छा सुन्दरी ! मैं आज तो जाता हूँ । तू पुनः विचार कर ले और अपने इस व्यर्थ हठ को छोड दे नही तो मुझे फिर वही उपाय कार्य मे लाना पड़ेगा ।

(प्रस्थान)
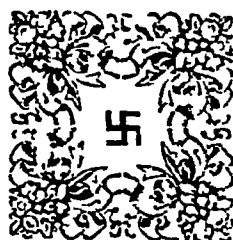
स्थान—सुदर्शन कुमार का शयनागार; समय—प्रभात काल. सुदर्शनकुमार अपनी पत्नी सुलोचना समेत बैठे हुए हैं।

सुदर्शन—(सुलोचना की ओर देख कर) प्रिए ! आज तुम्हारे सरल मुख मण्डल पर विषाद की यह काली रेखा क्यों दिख रही है. तुम्हारे प्रसन्न हृदय पर किस चिन्ता ने आक्रमण किया है।

सुलोचना—प्राणनाथ ! आज रात्रि के समय मैं ने एक भयानक दुःस्वप्न देखा हैं, उसका स्मरण करते ही मेरा हृदय भय से कांप रहा हैं और रह २ कर मेरे मनमें अनेक दुश्चि-न्ताएं उत्पन्न हो रही हैं।

सुदर्शन—प्रिए ! तुम जैसी बुद्धिमती महिला को स्वप्न के विषय में इतना संदेह ग्रस्त होकर दुखित नही होना चाहिए।

-
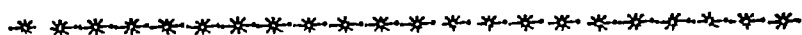
सुलोचना—प्राणनाथ ! मैं बहुत कुछ विचार करती हूँ, किन्तु मेरे सामहने से वह भयानक दृश्य नहीं हटता है और किसी अज्ञात दुर्घटना की सूचना देता हुआ भय का संचार कर रहा है।

सुदर्शन—प्रिये ! वह कैसा स्वप्न है जिसके अवलोकन से तुम्हारा हृदय इतना दुखित हो रहा है !

सुलोचना—प्राणनाथ ! मैं अपनी सैय्या पर घोर निद्रा में मग्न हुई पडी थी, कि रात्रिके अन्तिम पहर में मैंने देखाकि मैं अपने विशाल भवन में आपके साथ सुख पूर्वक विनोद कर रही हूँ। इसी समय अचानक एक भयानक मूर्ति हम लोगों के सम्मुख प्रकट हुई। उस भयानक मूर्तिको अवलोकन कर मैं भयातुर होकर आपके हृदय से चिपट गई . . .

सुदर्शन—हां, तब इसके पश्चात् क्या हुआ ?

सुलोचना—किन्तु वह भयानक मूर्ति मुझे आपके समीप से हटा कर आपको बलात् एक भयानक स्थान में ले गई और मैं आपके वियोग से बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। (इतना कहते कहते भय से उसका स्वर मंद हो जाता है)

सुदर्शन—इसके पश्चात् फिर क्या देखा ?

सुलोचना—इसके कुछ समय पश्चात् होश आने पर मैंने देखा। कि वह भयानक मूर्ति आपको किसी दुष्कार्य के करने का संकेत कर रही है, किन्तु आप उस कार्य के करने के लिए किंचित् भी सहमत नहीं होते। तब उसने क्रोधसे अपने नेत्रोंको लाल लाल करके आपको एक उच्च शिखर पर लेजाकर वहां से नीचे की ओर गिरा दिया। मैं यह दृश्य देख कर एक लम्बी-चीख मारकर गिरपडी, किन्तु कुछ समय पश्चात् ही मैंने देखा कि आप मेरे समीप बेहोशावस्था में पड़े हुए हैं और चारों ओर से अनेक व्यक्ति आपको घेरे हुए खड़े हैं! इसी समय मेरी निद्रा भंग होगई और उसी समय से मेरा हृदय भय से कंपित हो रहा है।

सुदर्शन—प्रिए! स्वप्न के विषय में तुम्हें किसी प्रकार की चिंता नहीं करना चाहिए। जागृत अवस्था में इसी प्रकार के किसी दृश्य अवलोकन से ही निद्रावस्था में इस प्रकार क्रिया हुई है। अच्छा चलो! देवालय को चलकर ईश्वरोपासना के कार्य में मग्न हो, जिससे समस्त दुश्चिन्ताएं नष्ट होंगी और आनंद मंगल की वृद्धि होगी।

(दोनों का प्रस्थान)

पंचम अङ्क—प्रथम दृश्य

समय—प्रभातकाल स्थान—राजमहल महा-
रानी अभया महलके मनोरम स्थान में
बैठी हुई है । चपला और मोदा-
मिनी दासियों का प्रवेश

चपला—महारानी जी ! आज उपवन में समस्त वृक्ष नए फल और फूलों से सजधज कर इठलाने लगे हैं। आम्र के ऊपर सुन्दर सुगंधित मौर आने लगे हैं और लाल लाल टेसू पुष्प वसन्तराज का स्वागत मनाने लगे हैं मधुपगण मस्त होकर गुलाब की कली के ऊपर मण्डरा कर मनोमुग्ध हो रहे हैं और कोयल भी मीठे स्वर से पंचमराग आलापने लगी है नथा हृदय में कामदेव के अखंड राज्य की अनन्त सत्ता का संगीत सुना कर मदन को जगाने लगी है । महा-रानी जी ! सचमुच ही उपवन की शोभा अत्यन्त दर्शनीय है ।

* *

सौदामिनी—महारानी जी ! उपवन में समस्त नगर निवासी वसन्त की शोभा दर्शनार्थ जा रहे हैं। यौवन से मदोन्मत्त हुई रमणिएं अपने पति के साथ २ क्रीड़ा विनोद करती, गाती और इठलाती हैं। पक्षियों ने भी वसंत की शोभा वर्द्धन के लिए मधुर कलरव करना प्रारम्भ कर दिया है, लताएं विकसित हो उठी हैं, हरयाली ने अपना साम्राज्य फैला रक्खा है। वह वृक्ष जो वृद्ध मानवों के समान शुष्क और विलासियों द्वारा अदर्शनीय थे आज नवीन पल्लवों और पुष्पोंसे सजकर दंपतियों के नेत्रों को आकर्षित करने लगे हैं। ऋतुराज वसंत ने आज अपना अपूर्व श्रृङ्गार सजा रक्खा है। देवी वास्तव में वसंत की शोभा अत्यंत नेत्र रंजक है।

अभया—अच्छा जाओ ! सारथी से कहो कि महारानी आज वसंत शोभा दर्शनार्थ उपवन को जाएंगी, शीघ्र रथ सुसज्जित करे।

(प्रस्थान)
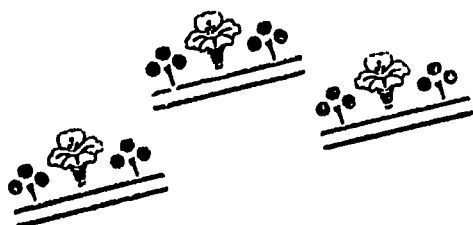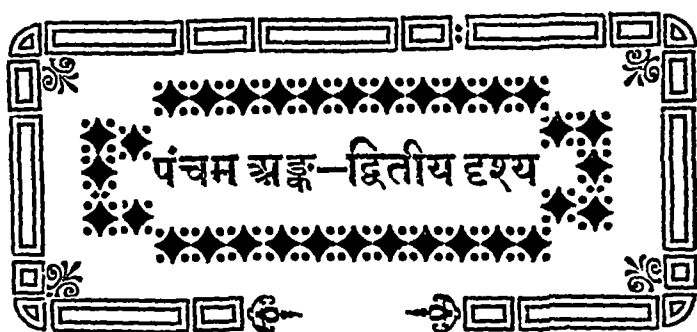
महारानी अभया का अपनी सहेलियो और पुरोहित पत्नी कपिला समेत वसन्त स्थान मे विचरण करना, इसी समय सामने से सुदर्शनकुमार की पत्नी सुलो-चना का अपने बालको समेत प्रवेश ।
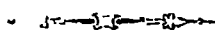
अभया—(सुलोचना की ओर अवलोकन कर) अहा ! यह कौन सौभाग्य शालिनी महिला है जिस की गोद देवकुमारों के स्वरूप को लज्जित करने वाले मनोज्ञ कुमार सुशोभित कर रहे हैं । अहा ! इन कुमारो की अकृत्रिम सुन्द-रता मे वसत की समस्त शोभा को पराजित कर दिया है । इनका सरल और प्रफुल्लित मुख मण्डल, कमल के विकसित हुए पुष्पों के सौदर्य की हँसी कर रहा है. यह कुमार एक बार के अवलोकन से ही हृदय को बलात् अपनी ओर आक-र्षित कर रहे है ।

-

चपला—महारानी जी ! यह नगर के प्रधान श्रेष्ठी-कुमार सुदर्शन की सौभाग्यशालिनी पत्नी हैं और यह उन्हीं के सुन्दर कुमार हैं।

अभया—यह महिला बड़ी ही पुण्यशालिनी है जो उसे इस प्रकार मदनकुमार सदृश सुन्दर पति प्राप्त हुआ है।

कपिला—(चौंककर) हैं क्या यह श्रेष्ठी कुमार सुदर्शन के पुत्र हैं; नहीं यह कभी नहीं हो सकता, यह बिल्कुल असत्य है।

चपला—क्यों ? तुम्हें इतना आश्चर्य क्यों हुआ, क्या इस में तुम्हें कुछ सन्देह है ? नहीं ! यह मैं बिल्कुल सत्य कह रही हूँ—यह उन्हीं सुदर्शन कुमार के ही पुत्र हैं।

कपिला—(उत्तेजना पूर्वक) क्या यह सत्य है ! तब तो उसने मुझे बड़ा धोखा दिया। (लज्जित सी होकर) नहीं, मैंने तो यह श्रवण किया था कि कुमार सुदर्शन नपुंसक हैं, फिर उन के पुत्र का होना कैसे संभावित हो सक्ता है।

अभया—सखी कपिले ! यह कल्पना कैसे की जाती है, कि वह अत्यन्त भाग्यशाली कुमार जिसे अवर्णनीय रूप

सपत्ति प्राप्त हुई है, नपुंसक होगा। बतला! तुझे यह कैसे ज्ञात हुआ? उस ने तुझे क्या धोखा दिया?

कपिला—नहीं, महारानी जी! यह शब्द मेरी असाव धानी से मेरे मुह से निकल पड़े हैं। मैंने यह किसी व्यक्ति के द्वारा श्रवण किया था कि सुदर्शनकुमार नपुंसक है।

अभया—नहीं कपिले! तू वास्तविक रहस्य को छिपा रही है। इस तेरी बात के अन्दर अवश्य कुछ गोलमाल है। कह, शीघ्र कह! बोलती क्यों नहीं? बतला! यह तुझे कैसे ज्ञात हुआ?

कपिला—महारानी जी! जब आप इतना अनुरोध कर रही हैं तो अपने हृदय की बात आपको बतलाती हूँ (दासियों तथा सखियों की ओर संकेत करती हुई), किन्तु इतना अवश्य ध्यान रखिए कि यह समाचार किसी अन्य को न ज्ञात होने पाए अन्यथा मेरा सर्वनाश हो जाएगा।

अभया—(अपनी दासियों तथा सखियों को हटाती हुई) नहीं सखी! तू निःसंकोच रूपसे कह। क्या मैं इतनी मूर्ख हूँ जो इन बातों को भी नहीं समझ सक्ती हूँ।
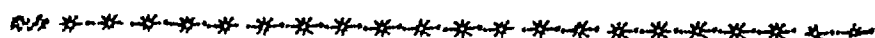
कपिला—अच्छा महारानी जी ! सुनिए मैंने एक बार उस नव यौवन और सुन्दरता सम्पन्न मदनकुमार सुदर्शन को देखा: उसके अवलोकन से मेरा हृदय काम की तीव्र ज्वाला से जलने लगा। मेरी चतुर दासी उसे अपने छल कौशल द्वारा मेरे समीप ले आई, किन्तु वह अपने को नपुंसक बतला कर और इस प्रकार धोखा देकर चलागया। मैं नही समझ सक्ती कि यह उसका कथन कैसे असत्य हो सक्ता है।

अभया—हाय कपिले ! तू बड़ी भोली भाली और पुरुषों के इस छल कौशल से सर्वथा अनभिज्ञ है, तभी तो वह धूर्त तुझे इस प्रकार धोखा देकर निकल गया। सचमुच तू मानवों के मनोविज्ञान को नही जानती।

कपिला—महारानी जी ! तब क्या वास्तव में उसने मुझे धोखा दिया। क्या उसका वह वार्तालाप सर्वथा असत्य था ? तबतो उसने मुझे खूब छकाया। नहीं, किन्तु मुझे यह विश्वास नहीं होता। मैं अबभी उसे असत्य नहीं ठहरा सक्ती। क्या मनुष्य भी ऐसा हो सकता है कि जो वह रमणी के अनिद्यनीय रूपराशि को इस प्रकार ठुकरादे ! मदन के इन तीव्र बाणों के सन्मुख अपने को स्थिर रख सके और कामिनी के इन तीक्ष्ण कटाक्षों से, विलास की सुदृढ़ रस्सियों से अपने को

सुरक्षित रख सके मैं कदापि विश्वास नहीं कर सकती। मेरा हृदय स्वीकार नहीं करता कि अग्नि के साथ खेलता हुआ कोई भी पुरुष अपने अङ्ग को जलने से इस प्रकार बचा सके, कालिमा की कोठरी में प्रवेश कर अपने धर्म वस्त्र को इस प्रकार सुरक्षित रख सके। महारानी जी! मैं इस बात पर विश्वास नहीं कर सकती।

अभया—हाय सरल हृदया रमणी! तू संसार की परिस्थिति के ज्ञान से सर्वथा शून्य है और मानवों के कौशलों से बिलकुल अपरिचित है। अन्यथा तू इस प्रकार कभी भी नहीं कहती। अभी तू यह नहीं जानती कि ऐसे धर्मनिष्ठ मानवों को किस प्रकार वाक्य जाल में फँसाकर रूपश्री रश्मियों से बाँधा जाता है और किस प्रकार मदन के विलासों द्वारा पराजित कर उन्हें विषयेच्छुक बनाया जाता है। सचमुच क्या तुझे इतनी शीघ्रता से मदन की मधुरता को लज्जित करने वाला वह कुमार प्राप्त हो सकता था।

कपिला—महारानी जी! आप मुझे इस प्रकार ज्ञान शून्य और वंचना-वंचित समझ रही हैं, सो यह आपका समझना ठीक हो सकता है, किन्तु मैं भी आपको पूर्ण कुशल और
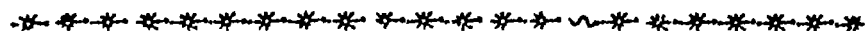
चतुरा तभी समझूँगी जब आप उस मदनकुमार को किसी प्रकार अपने स्नेह बंधन में बाँध सकेंगी।

(दासियों का प्रवेश)

एक दासी—महारानी जी ! संध्या का समय हो चुका है, चलिए महल को प्रस्थान कीजिए।

(सबका प्रस्थान)

षष्ठम अङ्क—प्रथम दृश्य

स्थान—राज्यमहल, समय—मध्यान्हः महारानी अभया अपने महल में मन्द स्वरमें निम्नोक्त गीत गाती हुई उत्तेजित भाव से टहल रही है।

प्राण प्रिय आज बनाऊंगी।
गले से उसे लगाऊंगी ॥ ध्रुव ॥
तीक्ष्ण मदन शर साथ, तानकर तिरछी नेत्र कमान।
व्रत का गढ ढाऊंगी सहसा ! दिखा मधुर मुस्कान ॥
हृदय में मदन जगाऊंगी।
रूप पर उसे लुभाऊंगी ॥ १ ॥

गाऊंगी मैं ऐसा विश्व विमोहन, मोहन राग।
भडका दूंगी उस के मन में तीव्र मदन की आग ॥
ज्ञान का कटक हिलाऊंगी।
अचल मन आज चलाऊंगी ॥ २ ॥

देखूंगी, जायेगा कैसे ? वह मुझ से मुँह मोड़ ।
यह विलास का प्रबल जाल, जायेगा कैसे तोड ॥
मैं ऐसा साज सजाऊंगी ।
प्राण प्रिय आज बनाऊंगी ॥ ३ ॥

आज मैं रमणी शस्त्रशाला के समस्त शस्त्रों का प्रयोग करूंगी और देखूंगी कि वह कब तक अपने एक पत्नीव्रत पर दृढ़ और स्थिर रह सकता है। वह तुच्छ मानव और रमणी के—इस विश्व विजयनी रमणी के—संसारी मानवों द्वारा उपासक मधुर रूप के तीव्र बंधन से विमुक्त रह सके। इन तीक्ष्ण नेत्र बाणों से अवेध्य रह सके और इस विलास के मधुर प्याले को इस प्रकार ठुकरा दे सके। नही ! यह नहीं हो सकता ! यह कदापि नही हो सकता।

आज उसे—हां ! वह मेरे सामने आये और मेरी नेत्रों को चकाचौंध करने वाली सुन्दरता पर मोहित न हो सके। इस यौवन के मद से छलकते हुए प्याले को ठुकरा दे, यह हो ही नहीं सक्ता। आज मैं संसार को दिखलाऊंगी कि संसार मे नारी के रूप के सम्मुख ऐसा कोई भी तपस्वी व्यक्ति नहीं है, जो

-

अपना समस्त जप तप न भूल जाय और उस के चरणों के ऊपर अपना गर्वित मस्तक न झुकाए।

(पंडिता धाय का प्रवेश)

पंडिता—बेटा ! आज तेरे मुख मण्डल पर चिन्ता की रेखाए क्यों प्रतीत होती है ? तेरा चित्त क्यों इतना उद्विग्न हो रहा है? कह तेरी इस अशांति का क्या कारण है ?

अभया—मां ! आज मैंने बड़ा विकट सकल्प किया है, बडी भीषण प्रतिज्ञा की है। उस सकल्प के पूर्ण करने के लिये मेरे हृदय में घोर द्वंद युद्ध हो रहा है। हां ! किन्तु उस मेरे संकल्प के पूर्ण करने में मेरी इस प्रतिज्ञापूर्ति में तुझे अवश्य सहायक बनना पड़ेगा।

पंडिता—बेटी ! मै तो निरंतर तेरे समस्त कार्यों की पूर्ति में सहायक रही हूं आज तेरे इस बात के कहने का क्या कारण है ? और हाँ मेरे रहते हुए तुझे कोई कार्य करने की आवश्यकता ही क्या है ? मुझ से कह, मै तेरे उस कार्य का शीघ्र साधन करूंगी। मेरे होते हुए, तुझे इस प्रकार चिंता ग्रस्त होने की क्या आवश्यक्ता है ?

अभया—अच्छा सुन ! देख मै ने आज यह प्रतिज्ञा की

* *

है, कि मैं जब तक उस सुदर्शन कुमार के व्रत को भङ्ग नहीं कर दूंगी, जब तक मैं उसे यह साबित नहीं कर दूंगी कि उस की समस्त प्रतिज्ञाएं कोरा ढोंग है और जब तक मैं उसे अपने इस अकृत्रिम रूपराशि के सम्मुख पराजित नहीं कर दूंगी तब तक मैं अन्न जल ग्रहण नहीं करूंगी। अस्तु, आज मैं उसे अपने रूप राशि में बद्ध करूंगी और इस कार्य का साधन तुझे ही करना होगा।

पंडिता—बेटी! यह क्यों! ऐसी भीषण प्रतिज्ञा क्यों! ऐसा प्रण क्यों?

अभया—क्यों! पूछना चाहती हो? अच्छा तब सुनो! यह इस लिये कि मैं उसे प्यार करती हूँ, मैं उसे चाहती हूँ और यह अपना यौवन और जीवन उस पर समर्पण कर चुकी हूँ, किन्तु वह व्रती है, वह महिलाओं की रूप राशि का निरादर करता है, वह इस मनोहर यौवन के बगीचे से दूर दूर भागता है। बस इस लिए! हाँ, इसी लिये मैं उसे अपने इस रूप जाल में फँसाऊंगी और अपना प्राण प्यारा बनाऊंगी!

पंडिता—बेटी! सुन एक नाते से मैं तेरी मां हूँ मैं ने
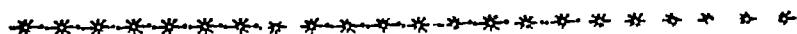
तुझे अपना दुग्ध पान कराया है, मैं कहती हूँ यह कार्य तेरे सर्वथा अयोग्य है। यह वासना तेरी सार्वस्व नाशक है और यह प्रतिज्ञा! इस पाप पूर्ण कार्य करने की तो कोई प्रतिज्ञा ही नही हो सकती है। यह तो तेरा दुराग्रह है, इसे तू अभी छोड दे और इस हठ से अपना मुंह मोड ले।

अभया—माँ! यह नही हो सकता। मै भोजन पान ग्रहण करना त्याग सक्ती हूँ, बन्धुओं के स्नेह से मुँह मोड़ सकती हूँ और अपने जीवन को त्यागने के लिए भी तैयार हो हो सकती हूँ, किन्तु यह प्रण जीते जी मै कभी नही छोड सक्ती, तुझे मेरा यह कार्य अवश्य पूर्ण करना होगा। यदि तू मेरा जीवन चाहती है, यदि तेरे हृदय में मेरे प्रति किञ्चित् भी स्नेह है तो तुझे, हां तुझे ही इस मेरे उद्देश्य में सफलता प्राप्त करनी होगी।

पंडिता—बेटी! तूने अभी इस विषय पर सद्बुद्धि पूर्वक विचार नही किया है, तू क्षणिक वासना में उत्तेजित हो रही है, एक बार पुनः इस विषय पर शुद्ध हृदय से विचार कर।

अभया—मां! मैंने इस विषय पर घंटो बैठ अर अच्छी तरह से विचार किया है। इसके प्रथम किसी कार्य के करने
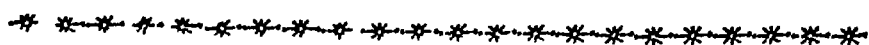
मे इतना अधिक विचार मैंने कभी नही किया; इससे अधिक मैं विचार ही नही सक्ती।

पंडिता—देवी! किन्तु यह निश्चय विश्वास रक्खो कि इस कुटिल कार्य का अन्तिम फल अच्छा नहीं होगा।

अभया—कुछ भी हो मैं इस विषय में अब अधिक कुछ नही सुनना चाहती। मुझे केवल उस सुदर्शन कुमार की आवश्यक्ता है, मै उसका गर्वित मस्तक एक वार इस रमणीरूप के सम्मुख झुका हुआ देखना चाहती हूँ, बस तू किसी प्रकार उसे मेरे समीप लादे, अन्यथा तुझे मेरे क्रोध की तीव्र ज्वाला में अवश्य जलना होगा।

पंडिता—बेटी! तू इतना रुष्ट क्यो होती है? मै तेरे कार्य साधन में कभी भी इन्कार नही कर सक्ती।

अभया—अच्छा तब आज तुझे उस कुमार को मेरे सम्मुख अवश्य लाना होगा।

पंडिता—बेटी! जो तू कहेगी वही होगा। मै तेरे इस कार्य साधन में पूर्ण प्रयत्न करूंगी।

अभया—अच्छा स्मरण रखना। यह कार्य तुझे आज ही करना होगा।

(रानी का प्रस्थान)

(पंडिता उस स्थान पर अकेली रह जाती है और धीरे २ निम्न प्रकार गुन गुनाती जाती है)

पंडिता—(स्वगत) ओहो ! देखो ! यह मेरे ही हाथों की पाली पोसी लडकी आज रानी बनकर मुझसे—हां मुझसे ही—इस प्रकार त्यौरी चढ़ाकर क्या कहती थी, कि तेरी जान की खैर नहीं। मानों मेरी जान मुफ्त की ही है। और मैं कहती भी क्या थी ? केवल उसे समझाती ही थी न। उसे पाप पथ से हटाकर सत्य मार्ग पर ही तो ला रही थी। बस ! इस काम की यह सज़ा कि जान का भी नुकसान। भाई आजकल किसी को उपदेश देना ही पाप है, जहां किसी को कुछ हितकारक वार्ता सुनाई, सच्चरित्रता का उपदेश दिया कि वह उसे नीम की तरह कडुवा मालूम पड़ा। सब से अच्छी बात तो इस जमाने में यही है कि चाहे कोई कैसा ही बुरा काम क्यों न करता हो, परन्तु उसकी हां में हां मिलाते रहो, बस फिर तो तुम्हारा बेडा पार है. वह तुम्हारा दिली यार है। (रुक कर) परन्तु मैं भी इस झंझट में क्यों पड़ूं; मेरी क्या हानि "चाहे मुर्दा दोज़ख जाय, चाहे बिहिश्त" मुझे अपने काम से मतलब (कुछ समय को मौन रह कर) हां ! तब मुझे अवश्य उस सुदर्शन कुमार को लाना पड़ेगा। लेकिन यही
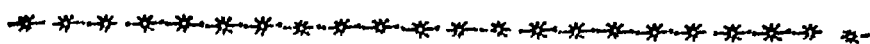
-※-

तो बड़ी कठिन बात है कि उसे लाऊँ कैसे (कुछ विचार करने के पश्चात् सिरको हिला कर) हां समझ गई, खूब याद आया आज ही तो,हां आज ही तो उसके ध्यान करने का दिन है,आज ही तो वह स्मशान भूमि में जाकर अर्द्ध रात्रि पर्यन्त केवल एक वस्त्र धारण कर समाधि लगायेगा। बस इस कार्य के लिए यह ही अवसर उपयुक्त है।

(हास्य सहित) कोई समझता होगा कि इस वृद्धा के शरीर में कुछ शक्ति ही नहीं है, किन्तु उनको यह ज्ञात नहीं है कि "तब के वृद्ध अबके जवान, दोनो बल में एक समान" वैसे तो मैं वृद्धा होगई हूँ परन्तु मेरे शरीर में ऐसी शक्ति है कि सुदर्शन जैसे ४ व्यक्तियों को वैसे ही उठा कर रख दूं। तब फिर मुझे इस कार्य के लिये शीघ्र कटिबद्ध होजाना चाहिए।

(प्रस्थान)

षष्ठम अङ्क—द्वितीय दृश्य
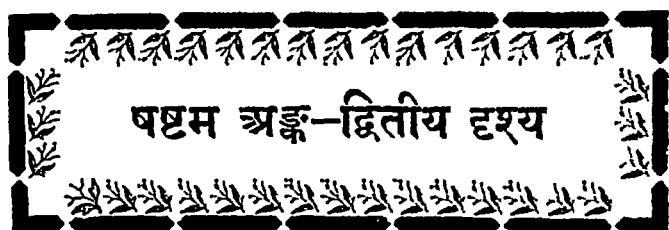
स्थान—राजमहल; समय—अर्द्धरात्रि; चारों द्वारों पर द्वार रक्षक सशस्त्र खड़े हुए पहरा दे रहे हैं। पंडिता धाय मिट्टी का पुतला मस्तक पर रक्खे हुए प्रथम द्वार पर प्रवेश करती है।

द्वार रक्षक—(रोक कर) तू कौन है जो अर्द्ध रात्रि के समय इस प्रकार राजमहल में प्रवेश कर रही है ?

पंडिता—तुझे नहीं मालूम कि मैं महारानी की अत्यन्त प्यारी पंडिता धाय हूँ। रानी ने पातिव्रत धारण किया है, अतः वे समस्त दिन निराहार रह कर अर्द्ध रात्रि को पुरुष की पूजा करती हैं अस्तु, उनके लिए यह मिट्टी का पुतला लिए जा रही हूँ।

द्वारपाल—अरी! मुझे यह पाखण्ड मत दिखा; मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ। मेरे ही सम्मुख तू साक्षात् पुरुष को लिए जा

रही है और मेरी आँखों में धूल डालना चाहती है। सच कह इस पुरुष को लेकर तू कहाँ जायगी।

पंडिता—(पुतले को पृथ्वी पर पटक कर) देख! यह मिट्टी का नहीं तो किस का है। मूर्ख! तूने इस प्रकार उसे तुड़वा डाला। अच्छा ठहर, मैं महारानी के समीप जाकर तेरी इस धृष्टता का फल चखाती हूँ।

द्वाररक्षक—माँ! रक्षा करो! मुझे जीवन दान दो। माँ! मुझसे अपराध हुआ, इसे क्षमा करो।

पंडिता—(क्रोध संयुक्त स्वर में) अच्छा देख! अब तो तुझे क्षमा करती हूँ, किन्तु पश्चात् कभी ऐसी धृष्टता मेरे साथ नहीं करना।

(धाय उसी समय जाती है और उपरोक्त प्रकार द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ द्वार पर पुतलों को ले जाकर गिराती हुई चारों द्वारपालों को अपने आधीन बनाती है और अन्त में सुदर्शनकुमार को उसी प्रकार पुतले की सदृश उठाकर राजमहल में लेजाकर रानी के समीप रख आती है)
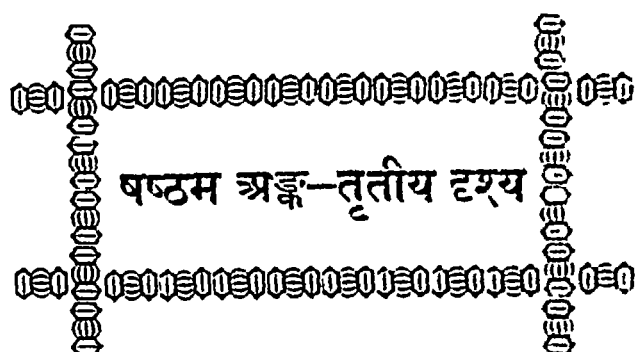
षष्ठम अङ्क—तृतीय दृश्य

समय—अर्द्ध रात्रि स्थान—राजमहल महारानी अभया अपने विलास स्थान मे नेत्र रञ्जक मनोमोहक वस्त्राभूषण और अलंकारों से सुसज्जित कोमल सैय्या पर बैठी हुई है। अनेक प्रकार विलास की सामग्रिओं द्वारा समस्त स्थान उत्तम रीति से सजाया गया है। साम्हने की सैय्या पर सुदर्शन कुमार ध्यान में निश्चल हुए बैठे है।

अभया—(सुदर्शन कुमार को देखकर कोमल स्वर से) प्रियतम! आप किस विचार मे मग्न है, किस दुश्चिन्ता में संलग्न है। प्राणाधार! मेरे हृदय को विकसित करने वाले अपने नेत्र कमलों को किंचित् उद्घाटित कीजिए और इस अक्षय, मधुर और अनन्त यौवन साम्राज्य का अवलोकन कीजिए।
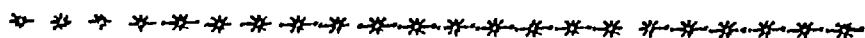
देखिए ! जिस के अकृत्रिम रूप राशि ने समस्त रमणियों के सौंदर्य को पराजित कर दिया है, जिस के नवीन यौवन की सुन्दरता ने वसंत ऋतु के सौंदर्य को लज्जित कर दिया है और स्वर्गीय सुन्दरियों के हृदय में जिस की मनोज्ञ लीला, विलास, अवलोकन से अत्यन्त डाह उत्पन्न हो रहा है वही सौंदर्यमयी रमणी आप के चरणों के समीप आप की किंचित् दया की भिक्षा पाने के लिए लालायित हो रही है, प्राणाधिक आप अपनी इस समाधि को समाप्त कीजिए और इस दासी पर प्रसन्न होकर अपने प्रेम पियूष का वर्षन कीजिए । (अनिमेषदृष्टि से सुदर्शन कुमार की ओर अवलोकन करती है, किन्तु उन्हें अपने ध्यान में पूर्णतः मग्न देखकर पुनः कहती है) प्यारे ! इस अपनी दासी पर ऐसी निष्ठुरता क्यों ? इतनी कठोरता क्यों ? इतनी निर्दयता क्यों ? प्राणेश्वर एक बार तो मेरे तृषित नयनों को अपने मृदु हास्य द्वारा तृप्त कीजिए, इस अनिन्द्य रूप राशि की ओर एक बार तो सदय होकर अवलोकन कीजिये:—

यह नव यौवन की मधुर उमंगें देखो ।
यह रूप राशि की प्रबल तरंगें देखो ॥
यह प्रभा पूर्ण सौंदर्य लालिमा देखो ।
यह नवल कामिनी की सुख गरिमा देखो ॥

यह प्रबल रूप सरिता लहराती देखो ।
इस मदन पताका को फहराती देखो ॥
यह प्रेम देव का साक्षात् मठ देखो ।
यह प्रणय राज्य का अद्वितीय मठ देखो ॥
देखो ! क्या अनुपम साज सजाया है यह ।
देखो ! रति को निज मध्य बुलाया है यह ॥
देखो ! लूटो लो काम राजधानी यह ।
देखो ! लो दासी बनी आज रानी यह ॥

प्यारे ! आप मुझ जैसी रमणी के साथ रमण करने से मुंह मत मोडिए ! मैं आपके ऊपर पूर्णतः अनुरक्त हूँ । अस्तु आप मुझसे अपने पूर्ण प्रेम का नाता जोडिए (प्रेम विह्वला रानी अधखिले कमल पुष्प सदृश नेत्रो से, विविध हाव भाव विलास दिखलाती है)

सुदर्शन—(स्वगत) हाय नारी ! तेरा यह पतन ! जिस सतीत्व के प्रभाव से तू अखिल ब्रह्माण्ड की पूजनीया देवी हो सकती है, जो संसार में मातृभाव की पवित्र प्रतिमा बनती है, जो सच्चरित्रता का आदर्श संसार के साम्हने उपस्थित करती है, जिसके शरीर में भगिनी स्नेह का सरस सरोवर लहराता है, वही नारी इस प्रचुर पाप की अग्नि उत्पन्न करने के लिए

कटिबद्ध है। पाप की प्रबल आँधी में संसार को उलट देने के लिए तैयार है। हाय मूर्ख नारी! क्या तूने सोचा है, कि यह नारी जन्म अनेक जन्मो में किए हुए कितने सुकृत्यों का फल है जिसे तू इस प्रकार पाप वश वर्ती हुई नष्ट करने के लिए तैयार है और हायरे मूढ़ मानव तेरी बुद्धि! जो तू इस प्रकार पाखण्ड से भरे हुए मायाविनी के घृणित अस्थिपिंड में आसक्त हो जाता है: किञ्चित् लालसा के वश होकर अपने अमूल्य चारित्र बल, अद्वितीय ज्ञान शक्ति और विश्व विजयिनी आत्मसत्ता को नष्ट कर देता है, हाय इन संसारी मानवों की कितनी अज्ञानता है? जो मानव क्रोधित हुए सिंह के दांतों को उखाड डालता है, जो मानव प्रचंड विवाद में अपने प्रचुर पांडित्य द्वारा अच्छे अच्छे न्याय वादियों को परास्त कर देता है। जो मानव प्रलय कारिणी सैन्य समूह के सम्मुख अपनी अजेय शक्ति से विजय प्राप्त करता है, वही मानव, हाय वही विवेक शील मानव, इसी माया मूर्ति, इसी विषय की साक्षात् प्रतिमा, इसी नश्वर सौंदर्य के प्रलोभन के सम्मुख अपने उच्च मस्तक को नत कर देता है, अपनी समस्त शक्ति को विस्मरण कर देता है। हाय यह मानव कितना अज्ञानी है! किन्तु मानव क्या वास्तव में इतना अज्ञानी है? नही वह तो अनन्त ज्ञान प्रतिभा और शक्ति का भण्डार है। उस के अन्तरतम में दिव्य रत्नों का

खजाना भरा हुआ है फिर क्यों वह इस प्रकार नश्वर, क्षण भङ्गुर और अन्त में अत्यन्त भीषण वेदना प्रदान करने वाले, आत्म शक्ति से वञ्चित करने वाले विषय प्रलोभनों में अपने सर्व ज्ञान और महत्व को विस्मरण कर देता है। यह इसी लिए कि वह अपनी आत्म शक्ति के ऊपर विश्वास नहीं करता और अपने आप को इन इन्द्रिय विलासों के सम्मुख झुका देता है, अपने को उन का दास बना लेता है, अन्यथा यदि वह अपने सत्य प्रण पर निश्चल रहे तो यदि वह अपनी आत्म शक्ति पर विश्वास करे तो, यदि वह अपने हृदय में निर्मल विवेक को जागृत करे तो और यदि वह अपने मन को निश्चल रखे तो संसार के सब से ज़बरदस्त प्रलोभनों का समूह यह नारी का विलास मानव को किंचित् भी हानि नहीं पहुंचा सकता। हां तब मेरा इस समय यही कर्तव्य है कि मैं अपने सत्य प्रण पर निश्चल रहूँ और अपने दिव्य स्वपत्नी संतोष व्रत पर दृढ़ रहूँ। (ध्यान में पूर्ण मग्न हो जाता है।)

अभया—प्यारे ! देखिए ! कितने समय से मैं आप की सेवा में आप के प्रेम की भिखारी बन कर खड़ी हुई हूँ, किन्तु आप इतने निष्ठुर हृदय हैं कि मेरी ओर किंचित् भी कृपा दृष्टि से विलोकन नहीं करते। प्रियतम ! आप के ऊपर
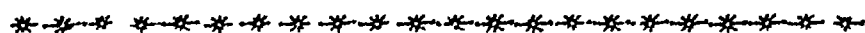
सर्वस्व समर्पण करने वाली, आप के स्नेह बन्धन में अपना जीवन अर्पण करने वाली अपनी इस दासी पर आप को इतनी निर्दयता नही धारण करनी चाहिए। प्रियतम ! आपको मैं इतना कठोर हृदय नहीं समझती थी। मैं नहीं जानती थी कि आप, शरणागत आई हुई रमणी पर इस प्रकार कठोरता का व्यवहार करेंगे। प्राण प्यारे! एक बार हां, केवल एक बार ही आप, विरह मे प्राण विसर्जन करने वाली इस रमणी को प्रणयदान देकर उस की प्राण रक्षा कीजिए। उसे अपने प्रेम की भिक्षा देकर जीवन दान दीजिए। नाथ ! मै सच कहती हूँ कि यदि आप मुझ पर किंचित् भी अनुग्रह करेंगे तो आप के इस विशाल साम्राज्य का स्वामी बनने में किंचित् भी विलम्ब नहीं होगा और इस प्रकार उत्तमोत्तम स्वर्गीय उपभोग की वस्तुएं आप अनायास ही प्राप्त कर लेंगे।

प्रभो ! इस तीव्र तपश्चरण और कठिन व्रत के द्वारा आप किस अभूत पूर्व सुख प्राप्ति की इच्छा कर रहे हैं, आप किस वैभव की उपासना कर रहे है ? नाथ ! आप व्यर्थ इस उपासना के झंझट में मत पड़िए ! संसार मे कठिनता से प्राप्त होने वाला और दुर्लभ्य सुन्दरी रमणी के मिलन का अभूत-पूर्व सुख तो आप के सम्मुख उपस्थित है। आपको इस व्रत

के द्वारा और क्या अधिक सुख कर साम्राज्य प्राप्त हो सकेंगे ! स्वामिन् देखिए ! इस स्वर्गीय साम्राज्य से अधिक सुख कर संसार में और क्या सामान होगा। प्रभो ! आप इसका उपभोग कीजिये !

सुदर्शन—(स्वगत) हाय ! ब्रह्मचर्य और पवित्र शील धर्म के महत्व को नहीं समझने वाली यह रमणी किस प्रकार अपने सत्य धर्म को तिलांजुलि दे रही है। जिस पवित्र शीलधर्म के प्रभाव से मानव देवताओं द्वारा पूज्य हो सकता है, जिस अद्भुत शील धर्म के कारण संसार की समस्त अलभ्य वस्तुएं अनन्त साम्राज्य स्वयं उपलब्ध हो सकता है, जिस शीलधर्म के द्वारा मानव अनायास ही विश्व वंदनीय हो जाता है, जिस अद्वितीय शील शक्ति के सम्मुख संसार की महान् शक्तिएं अपना मस्तक झुका लेती हैं, जो मानव जीवन का सार है और जो शीलधर्म समस्त जप, तप, व्रत और सच्चरित्रता का जीवन है, उस शीलधर्म को मदन के प्रचंड वेग से मदमस्त हुई यह विवेक शील कामिनी इस प्रकार नष्ट भ्रष्ट करने को तैयार हो रही है और इस अमौलिक रत्न को इन्द्रिय विषय कांच खण्ड के साथ परिवर्तन करने को तैयार हो रही है। तब क्या इस के इन दांभिक वचन जाल में फँस कर

मैं अपने सर्व श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य व्रत से चलित हो जाऊँ ? इस विषय प्रलोभन के सम्मुख अपने पवित्र प्रण को विस्मरण कर दूँ ? नहीं कदापि नहीं ! जो ब्रह्मचर्य आत्मोद्धार की जान है, जिस ब्रह्मचर्य व्रत की महात्मा गण निरन्तर आराधना करते हैं और जिस ब्रह्मचर्य व्रत के द्वारा मानव मुक्ति को प्राप्त कर अक्षय सुख का स्वामी बनता है, उसे इस नश्वर विषय सुख के सम्मुख, अन्त में भयानक वेदना उत्पन्न करने वाले इन्द्रिय विलासों के सम्मुख कदापि चलित नहीं होने दूँगा।

यह मदन के मद में मदोन्मत्त हुई रमणी मेरा किंचित् भी बिगाड़ नहीं कर सकती। मैं अपने प्रण पर पूर्ण रूपेण स्थिर हूँ। मेरा मन कभी तनिक भी चलित नहीं हो सकता और जब मेरा मन स्थिर है तब यह रमणी क्या स्वर्ग की देवांगनाएं भी मुझे मेरे प्रण से चलित नहीं कर सकती। क्योंकि यह बात निश्चित है कि जब तक हम स्वयं इच्छा नहीं करेंगे तबतक यह हमारा कुछ भी नहीं कर सकती। इसे अपनी समस्त शक्ति को लगा कर मेरे इस व्रत की परीक्षा कर लेने दो। चाहे यह मेरे गले से लिपटती रहे अथवा अङ्गस्पर्श करती रहे, किन्तु मदन का संसर्ग मन से है, यदि मन वश में है तो कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अन्त में अपने इस घृणित प्रयत्न में संलग्न होने

वाली रमणी को अवश्य पराजित होना पड़ेगा और अपनी इस पाप क्रिया पर इसे अवश्य पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

(पूर्ण समाधिस्थ हो जाता है)

अभया—(सुदर्शन कुमार को अपने ध्यान में निश्चल देखकर, स्वगत) बड़े आश्चर्य की बात है कि अनेक प्रयत्न करने पर भी, देवताओं को चलित करने वाले विलासों और मधुर कामोद्दीपक गायनों द्वारा भी इसका हृदय मेरी ओर किञ्चित् भी अनुरक्त नहीं हुआ। तब क्या वास्तव में एक साधारण व्यक्ति द्वारा मुझे अपने इस प्रयत्न में असफल होना पड़ेगा? नहीं, कदापि नहीं! (प्रत्यक्ष में) प्यारे! देखो! आज तुम्हें अपने अत्यन्त सौभाग्य का दिवस समझना चाहिए जो इस प्रकार एक राजरानी आपके सौंदर्य पर इस प्रकार मुग्ध होरही है। किन्तु वास्तव में आप अवश्य बड़े अज्ञ प्रतीत होते हैं जो इस प्रकार इस स्वर्गीय साम्राज्य को ठुकरा रहे हैं। स्मरण रखिए जो साम्राज और स्वर्गीय सौंदर्य आज आपको किंचित् नेत्रके इशारे पर प्राप्त होरहा है वह अनेक जन्मों पर्यंत तीव्र तपश्चरण करने पर भी उपलब्ध नहीं होगा।

आप सुबुद्धि पूर्वक विचार करके समझ लीजिए कि इस प्रकार दुराग्रह पूर्वक मौनावलंबन से आपको कोई उत्तम फल प्राप्त नहीं होगा, प्रत्युत अत्यन्त हानि होने की आशंका है।

जो रमणी इस प्रकार सदय होकर एक भिक्षुक के ऊपर अपना सार्वस्व समर्पण करने के लिए तत्पर हो रही है वही विमुखावस्था में तीव्र से तीव्र और कठिन से कठिन यातना देने में भी समर्थ हो सक्ती है और इस प्रकार मेरे प्रेम का तिरस्कार करने पर, मेरी असीम कृपा को इस प्रकार ठुकराने पर यह निश्चय समझिए कि आपको मेरे अनंत कोपकी ज्वाला में अवश्य पड़ना होगा और उसका अन्तिम परिणाम अत्यंत भयानक होगा।

सुदर्शन—(ध्यानावस्था में, स्वगत) यह रमणी रुष्ट होने पर प्राण नष्ट कर देने के अतिरिक्त मेरा कुछ भी नहीं करसक्ती यह समझती होगी कि इस प्रकार इस शरीर के मोह में पड कर मैं अपने प्रण से विचलित हो जाऊँगा किन्तु इसे स्मरण नही है कि सत्य प्रणपालक मानव प्राणों की अपेक्षा अपने धर्म को कहीं अधिक मूल्यवान समझते हैं और धर्म के ऊपर हँसते हँसते प्राण विसर्जन कर देना तो उनका साधारण काम है। तब इसे अपने सङ्कल्प को पूर्ण करने दो, मैं समस्त आपदाएं, यहां तक कि अपने प्राण तक भी विसर्जन कर देने के लिए कटिवद्ध हूँ, किन्तु अपना सत्यप्रण कभी भी नहीं छोड़ने का।

अभया—(सुदर्शन कुमार को अपने ध्यान से किंचित् भी विचलित न हुए देखकर और पक्षियों का कलरव शब्द

श्रवण कर, स्वगत) ओह ! प्रभात हो रहा है, किन्तु यह सुदर्शन अपने सत्य व्रत से टस से मस नहीं होता मुझे खेद है कि इसके प्रेमपाश मे बद्ध होकर मैंने व्यर्थ प्रयास करके अपने महत्व को नष्ट किया और अब यदि यह मेरा दुष्कृत्य महाराजापर विदित हो जायगा तो मेरा सार्वस्व नष्ट होने तथा अपमानित होने में कोई सदेह नहीं है। अस्तु, अब मुझे अपनी कुटिल नीति से कार्य लेना चाहिए जिससे कि मै इस अपराध से सर्वथा विमुक्त रह कर इस दुष्ट सुदर्शन को अपने इस अपमान का बदला देसकूँ (कुछ समय को मौन रह कर) अच्छा ! तब वही उपाय ठीक है। (अपने समस्त आभूषणोको तोड डालती है और बहुमूल्य वस्त्रों को फाडकर अपना बहुत बुरा भेष बना लेती है। तत्पश्चात् निम्न प्रकार जोर से चिल्लाना प्रारम्भ करती है)

हाय ! क्या कोई द्वाररक्षक उपस्थित है जो इस पापी को पकडकर मुझ अबला की रक्षा करे। हाय ! देखो ! यह दुष्ट मेरे ऊपर बलात् व्यभिचार करने के लिए तत्पर हो रहा है। अरे द्वारपालो ! शीघ्र दौडो ! और इस दुष्ट से मेरी रक्षा करो !

(रानी का चिल्लाना श्रवण कर द्वाररक्षक सैनिक आते है और सुदर्शन कुमार को गिरफ्तार कर लेते है)
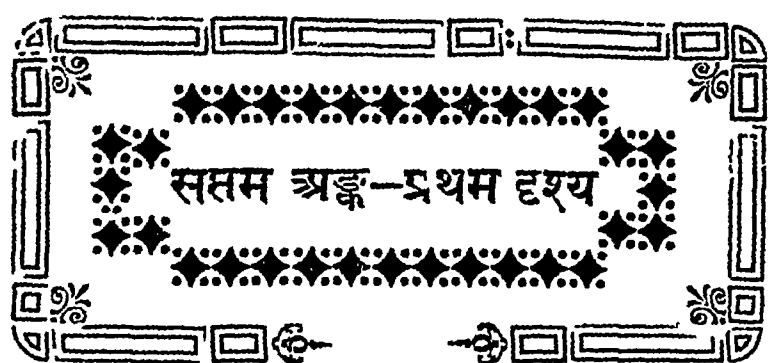
समय—प्रातःकाल, स्थान—महाराजा धात्री वाहन की राज्य सभा; महाराजा धात्रीवाहन अपने राज्यसिंहासन पर बैठे हुए है, समीप ही मन्त्री गण बैठे हुये है। साम्हने कई सैनिक सुदर्शन कुमार को पकड़े हुए खड़े है।

धात्रीवाहन—(द्वार रक्षकों से) तुम ने इसे राज्य भवन में किस अवस्था में पाया था?

द्वाररक्षक—महाराज! हम लोग अपने स्थान पर टहल रहे थे, कि इतने में हम ने अचानक ही श्रवण किया, कि राजमहल में कोई बड़े करुण स्वर से अपनी आत्म रक्षा के लिए पुकार रहा है। तब हम लोग शीघ्र राजमहल में पहुंचे और हम ने देखा कि महारानी जी बड़े संकोच से खड़ी हुई

* *
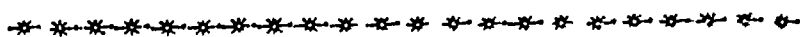
इसे दुत्कार रही थीं और अपनी आत्म रक्षा के लिए तत्पर थीं और यह सुदर्शन कुमार उस समय वहां उपस्थित था।

धात्रीवाहन—तब तुम ने वहां जाकर क्या किया ?

द्वाररक्षक—महाराज ! जब हम ने जाकर यह देखा कि महारानी के समस्त आभूषण टूटे और बिखरे हुए पड़े हैं, उनके वस्त्र भग्न हो रहे हैं और वह अपनी रक्षा करने के लिये बड़े आकुलित भाव से पुकार रही है तब हमने इस सुदर्शन कुमार को वहीं बैठा देख कर इसे ही गिरफ्तार कर लिया।

धात्रीवाहन—(क्रोध पूर्ण स्वर में) सुदर्शन ! तुम्हें बलात् व्यभिचार सम्बन्धी चेष्टा करने के अपराध में प्राण दण्ड की आज्ञा दी जाती है तथा इस प्रत्यक्ष अपराध में प्रमाण देने की भी कोई आवश्यक्ता नहीं समझी। अतएव अपराधी ! तुम प्राण दण्ड पाने के लिए कटिबद्ध हो जाओ !

(सुदर्शन कुमार निर्भयता पूर्वक दण्ड विधान को श्रवण करता है, उसका मुख मण्डल इस आज्ञा को श्रवण कर किंचित् भी खेदित नहीं होता है)

(ब्रह्मचारी ज्ञानानन्द का प्रवेश)

ज्ञानानन्द—राजन्! क्या आपने उपरोक्त दण्ड विधान के विषय में एक बार सुबुद्धि पूर्वक विचार किया है और क्या आप न्याय पूर्वक निश्चित रीति से यह कह सकते हैं कि इस धर्म वीर युवक के द्वारा यह ग्लानि पूर्ण दुष्कृत्य हुआ होगा?

धात्रीवाहन—महात्मन्! इस विषय मे विशेष विचार करने की कोई आवश्यकता नही है, क्योंकि अपराधी. स्वय अपराध करने की अवस्था में पकड़ा गया है, इस का अपराध प्रत्यक्ष हीप्रमाणित हो रहा है और इस अपराधका यही समुचित दण्ड हैं।

ज्ञानानन्द—महाराज! किंचित् विचार कीजिए! देखिए! इस धर्म वीर युवक के सौम्य मूर्ति मुखमण्डल की ओर देखिए। प्राण दण्ड की आज्ञा श्रवण करते समय इस का हृदय किंचित् भी विचलित नही हुआ। इसके मुँह पर तनिक भी मलिनता की रेखा नही आई। इसके उन्नत शरीर से किस प्रकार पवित्रता की आभा झलक रही है। महाराज! क्या आप विश्वास कर सकते है कि ऐसे धर्म भीरु पुरुष से ऐसा दुष्कार्य हुआ होगा। आप एक बार पुनः विचार कीजिए।

धात्रीवाहन—सन्यासी जी! मै इस विषय में विशेष

समय नष्ट नहीं करना चाहता। वास्तव में किसी के चेहरे पर से उस के हृदय की परीक्षा नहीं की जा सकती। संसार में ऐसे भी अनेक व्यक्ति उपस्थित हैं जो ऊपर से बड़े सरल और धर्मभक्त प्रतीत होते हैं, किन्तु वास्तव में उन का हृदय बड़ा कुटिल और पाप पूर्ण होता है और इस का प्रत्यक्ष प्रमाण यह सुदर्शन स्वय उपस्थित है। संयासी जी ! यह दण्ड उस के उपयुक्त है, इस में कुछ विचार करने की आवश्यकता नहीं।

ज्ञानानन्द—राजन् ! मैं निश्चय पूर्वक कहता हूँ कि सुदर्शन कुमार ऐसे व्यक्तियों में से नहीं है। उस का मुख मण्डल जितना सरल और प्रशान्त है, उस का हृदय कही उस से अधिक पवित्र और निष्पाप है। महाराज ! संसार में जहां बगुला भक्तों का समूह दृष्टिगत होता है वहां सरल प्रेक्षी हंस भी प्राप्त होते हैं। जहां पापी और दुराचारी व्यक्ति रहते हैं वहां पर पवित्र हृदय वाले महात्मा पुरुष भी होते हैं। अस्तु मैं आप से निश्चयरूप से कहता हूँ कि आप इस विषय में न्याय कीजिए। कुमार सुदर्शन सर्वथा निर्दोष है।

धात्रीवाहन—अच्छा ! यह बतलाइए इस के निर्दोष होने का क्या प्रमाण है ?

ज्ञानानन्द—इस का प्रमाण! राजन्! आप इस का प्रमाण चाहते हैं। अच्छा आप इसका प्रमाण लीजिए। महाराज! मेरे ही सम्मुख इस धर्मवीर सुदर्शनकुमार ने एक पत्नी व्रत की प्रतिज्ञा ली थी और सुदर्शन कुमार ऐसे व्यक्तियों में से नहीं है जो जीवन रहते हुए अपनी प्रतिज्ञा से भ्रष्ट हो जाय। महाराज! अब तो आप उस के निरपराधी होने पर विश्वास करेंगे।

धात्री वाहन—नहीं! द्वार रक्षकों ने उसे स्वयं अपराध करने की अवस्था में गिरफ़्तार किया है; अस्तु ऐसी अवस्था में यह प्रतिज्ञा कोई महत्व नहीं रखती। मैं अब इस विषय में कोई विचार नहीं कर सकता! इसका अपराध प्रमाणित है और इसका दण्ड भी यही समुचित है। मैं इसे प्राण दण्ड देता हूँ। वधिको! जाओ! इसे वध्य भूमि में ले-जाओ और मेरी इस आज्ञा का पूर्ण रूपेण पालन करो!

(वधिक गण कुमार सुदर्शन को पकड़ कर वध्य भूमि में ले जाते हैं।)

अष्टम अङ्क—प्रथम दृश्य

स्थान—विषया नन्द की बैठक विषया नन्द एक ऊँची बैठक पर बैठा हुआ है। उसके समीप ही कई मित्र गण बैठे हुए हैं।

विषया नन्द—(मित्रों की ओर देख कर) कहो मित्रो ! आखिर पोल खुल गई न ! मै कहता न था कि इसमें ज़रूर कुछ दाल में काला है। कुछ न कुछ अवश्य गड बड घुटाला है। परन्तु मित्र ! यह सुदर्शन निकला बड़ा छुपा रुस्तम। जनाब रानी को ही हथिआना चाहते थे, परन्तु फँसे भी खूब !

मायानन्द—बेशक दोस्त ! ऐसे मनहूस मनुष्यों की अंत में यही दुर्दशा हुआ करती है कि " न खुदा ही मिला न विसाले सनम ' इससे तो यार हम ही अच्छे हैं कि सरे आम हाथ मारते है और मज़ा उड़ाते है।

दुर्गतानन्द—बेशक मित्र ! इश्कबाजी के काम करने के लिये भी अक्ल की आवश्यकता पड़ती है। हम लोग तो इस
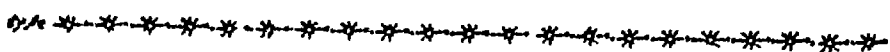
फ़न में निकल चुके हैं मगर यह हमारे उस्ताद ही बनना चाहते थे। इसे अगर ऐसा ही करना था तो हम लोगों से सलाह ले लेता फिर रानी भी मिल जाती और यह दुर्दशा भी न होती।

विषयानन्द—मगर यार! यह तो हम लोगों से कोसों दूर रहता था, हम लोगों को देखते ही अपना मुँह छिपाता था और अपने को बड़ी धर्मात्मा की नाक प्रसिद्ध करता था और हाँ इस ने तो अपने को यहां तक मशहूर कर दिया था कि यह अपनी स्त्री के अतिरिक्त किसी से बोलता भी नही हूँ। हज़रत खूब पाक साफ बनते थे, किन्तु अन्त में चक्कर में फँस ही गए।

मायानन्द—दोस्त! मुझे तो उस बेचारे की सूरत देखकर बड़ा तरस आता है। बेचारा न कुछ मज़ा ही उडा पाया और मुफ़्त में जान जा रही है। (विषयानन्द से) अच्छा दोस्त यह तो बतलाओ उस कामिनी का क्या हुआ? वह ठीक रास्ते पर आई या नहीं?

विषयानन्द—अरे दोस्त! क्या कहें। वह तो बला की औरत है। ना से हां की सीड़ियों पर उतरती ही नहीं है। उसे कितनो ही समझाया, कितना भय और लोभ दिखाया, किन्तु वह चिड़िया तो पिंजड़े में फँसती ही नहीं है।

-
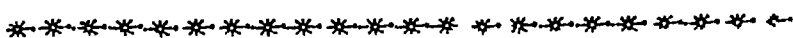
दुर्गतानन्द—यार तुम तो इस फन मे बड़े पहुँचे हुये हो, फिर यह क्या बात है ?

विषयानन्द—क्या कहूँ दोस्त ! मुझे कई औरतों से पाला पड़ा, मगर मैंने तो ऐसी हठीली स्त्री देखी ही नहीं। अच्छा आज और समझा देखता हूँ अगर समझ गई तो ठीक है। नहीं तो फिर

मायानन्द—नही तो फिर क्या कोई ज़बरदस्ती की बात तो है नहीं। देखो जी ज़रा सोच समझ के काम करना, कहीं तुम भी फँदे में न फँस जाओ।

विषयानन्द—अजी चलो जी ! मै कोई सुदर्शन की समान भोला भाला तो हूँ ही नही। मै ऐसे सैकड़ों चकमे दे चुका हूँ, मैंने ऐसे बहुत से फँसाने वाले देखलिए।

दुर्गतानन्द—अच्छा दोस्त ! आज हम लोग भी यहीं ठहरेंगे और तुम्हारी चालाकी देखेंगे, तुम कितने होशयार हो ?

विषयानन्द—अच्छा ! देखो जी किन्तु चुपचाप बैठे रहना यहां एक भी शब्द मत निकालना।

(विषयानन्द उन लोगों को यहीं बैठा देता है और आप समीप ही के उस दूसरे कमरे मे प्रवेश करता है जिसमें

-*-*-*-*-*-*-*-*-*-*-*-*-*-*-*-*-*-

एक सुन्दरी नीचे को मुंह किए उदास भाव से बैठी हुई है)

विषयानन्द—(सुन्दरी से) देखो जी ! आज मैंने यह प्रण किया है कि तुम्हें किसी प्रकार से मेरी बात पर अवश्य राज़ी होना पडेगा।

सुन्दरी—(खड़ी होकर क्रोध पूर्ण स्वर में) रे दुष्ट ! तू मेरे साम्हने से शीघ्र हट जा, मुझे तेरी पाप मई मूर्ति देखकर अत्यन्त घृणा होती है। मूर्ख ! क्या सती स्त्री को उस के प्रण से विचलित करना तू हंसी खेल समझ रहा है ?

विषयानन्द—देखो सुन्दरी ! मैं तुम्हारी बहुत डांट फटकार श्रवण कर चुका, किन्तु स्मरण रक्खो, मैं भी मनुष्य हूँ। मै अब इस प्रकार अपना अपमान नही सह सकूंगा। मै एक बार और कहता हूँ, तुम सीधी तरह से मान जाओ अन्यथा फिर मुझे बलात् .. . .

सुन्दरी—रे पापी ! इस प्रकार निर्लज्जता पूर्ण वार्तालाप करते समय तेरी जिह्वा नही फट जाती। यह स्मरण रखना मै यहां पर निःसहाय अवस्था में अवश्य हूँ, किन्तु यदि तूने मेरे शरीर पर तनिक भी हाथ लगाया तो तू अभी ही मृतकावस्था मे पड़ा हुआ दृष्टिगत होगा।

* *
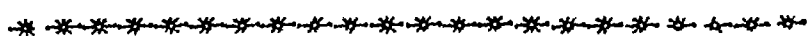
विषयानन्द—सुन्दरी ! मैं तेरी इस प्रकार धमकी से डरने का नहीं। मैंने ऐसी बहुत सी स्त्रियों को देख लिया है। देखूं तेरी यहां पर कौन सहायता करता है।

(विषयानन्द सुन्दरी को पकडने के लिए आगे बढ़ता है। सुन्दरी एक चीख मारती है और इसी समय कुछ मनुष्य आकर विषयानन्द और उसके मित्रों को गिरफ़्तार करके ले जाते है।)

अष्टम अङ्क—द्वितीय दृश्य

स्थान—स्वर्गलोक; समय—मध्यान्ह काल, सुरलोकाधिपति इन्द्र अपनी विशाल इन्द्रसभा में मनोज्ञ इन्द्रासन पर विराजमान हैं। समस्त देवगण योग्य आसन पर बैठे हुए हैं ।
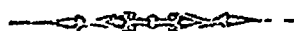
देवराज—(स्वगत) यह क्या ! आज मेरा इन्द्रासन क्यों कंपित हो रहा है ? किस भक्त के ऊपर आज आपत्ति उपस्थित हुई है ? (कुछ समय विचार कर के; प्रत्यक्ष में) अच्छा ! ज्ञात हुआ उस ब्रह्मचर्य व्रत निरत कुमार सुदर्शन के ऊपर इस प्रकार मिथ्या दोषारोपण कर के उस का प्राण नष्ट करने की चेष्टा की जा रही है।

मणिकेतु—महाराज ! यह कौन सुदर्शन कुमार है और उस पर क्या अत्याचार किया जा रहा है ? कृपया हम लोगो को भी विदित कीजिए।
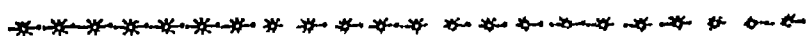
देवराज—सभ्यगणों ! श्रवण करो ! यह वही सुदर्शन कुमार है जिस ने आजन्म पर्यन्त स्वपत्नी संतोष व्रत पालन करने की दृढ प्रतिज्ञा धारण की थी । उसकी मनोहर सुन्दरता पर मोहित होकर महारानी अभया ने ध्यानमग्न कुमार सुद-र्शन को अपने महल में उठवा मंगवा कर उसे व्रत से च्युत करने के अनेक प्रयत्न किए, किन्तु वह दृढ व्रती कुमार अपनी प्रतिज्ञा से किंचित् भी चलित नहीं हुआ ।

देवगण—(उच्च स्वर से) धन्य है उस सुदर्शनकुमार की दृढ़ प्रतिज्ञा को । प्रभो ! इस के पश्चात् क्या हुआ ?

देवराज—रानी को सुदर्शनकुमार का व्रत भंग करने में असफल होना पड़ा, तब उस ने अपना दुष्कृत्य छिपाने के लिए और इस अपने अपमान का बदला चुकाने के लिए अपना बुरा भेष बना कर उस निर्दोष कुमार पर बलात्कार संबन्धी दोषारोपण किया ।

देवगण—(आश्चर्य से) महाराज ! भारतवर्ष की महिलाएं तो इस प्रकार दुष्कृत्या नहीं होतीं । अच्छा, प्रभो ! फिर क्या हुआ ।

देवराज—राजा ने इस का कुछ भी न्याय न करते हुए
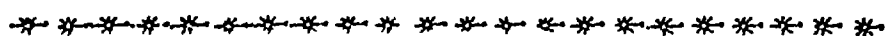
क्रोधावेश में अनेक सभ्य व्यक्तियों के समझाने पर भी उसे प्राणदण्ड की सजा दी है । वधिक लोग उसे प्राण दण्ड देने के लिए वध्यभूमि में ले गए हैं और यदि कुछ समय में ही उसकी रक्षा नहीं हुई तो वह महान् धर्मात्मा निर्दोष फांसी पर लटकाया जायगा और इस प्रकार हम लोगों के अवलोकन करते हुए ही इस एक धर्मशील व्यक्ति की अन्याय पूर्वक मृत्यु होगी, एवं धर्म का अपवाद होगा।

देवगण—जी महाराज ! यदि इस प्रकार उस धर्मात्मा का प्राण नष्ट होगा तो धर्म के प्रति लोगों की अवश्य अश्रद्धा होगी !

देवराज—किन्तु मैं धर्मभक्त व्यक्तियों की सदेव रक्षा करता हूँ ।

देवगण—प्रभो ! ऐसे धर्मात्मा व्यक्ति की अवश्य रक्षा करना चाहिए और धर्म के महत्व को अखिल विश्व में विस्तारित कर सच्चरित्रता की प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहिए।

देवराज—सभ्यगणों ! तुम्हें स्मरण होगा, कि जो अपने सत्य प्रण पर स्थिर रहता है, धर्म के सम्मुख अपने प्राण नष्ट हो जाने का किंचित् भी भय नहीं करता, उस को

मैं अवश्य सहायता करता हूँ उसे आपत्ति बन्धन से निर्मुक्त करता हूँ।

देवगण—प्रभो ! फिर उस की रक्षा का क्या उपाय है कृपया हम लोगों को विदित कीजिए।

देवराज—(मणिकेतु देव की ओर देखकर) में तुम्हे आज्ञा देता हूँ कि तुम उस वध्यस्थान में जाकर उस कुमार की रक्षा करने का प्रयत्न करो और ब्रह्मचर्य के महत्व को विश्व मानवों के समक्ष प्रख्यात करो। उन को बतलाओ कि सच्चरित्र व्यक्ति का, सत्य प्रणी मानव का कोई किंचित् भी अनिष्ट नहीं कर सकता उस की देवता लोग भी रक्षा करते है, किन्तु देखो ! इस कार्य में एक क्षण का भी विलंब न हो, अन्यथा फिर उस के जीवित रहने की आशा नहीं हे।

(मणिकेतु का सुदर्शन कुमार को रक्षार्थ
मनुष्य लोक को प्रस्थान)

स्थान—वध्यभूमि; यमपाल और यमधर सुदर्शन कुमार का वध करने के लिए परस्पर संवाद करते हुए जा रहे हैं।

यमपाल—भाई! आज बहुत समय के पश्चात् हमारे कार्य का अवसर आया, किन्तु आया तो इस प्रकार कि हमें इस सुन्दर कुमार का वध करना पडा।

यमधर—भाई! क्या करें, हमारा कार्य यही है, कि राजाज्ञा का पालन करें (कुछ सोचते हुए) भाई यह श्रेष्ठी कुमार तो इस प्रकार दुश्चरित्र नहीं ज्ञात होता, किन्तु उधर स्वयं महारानी जी ही का लगाया हुआ अपराध है। कुछ समझ नहीं पडता क्या रहस्य है?

यमपाल—भाई बड़े घरों की बातें बड़े पुरुष ही जानें; हमें इस से क्या? इतना अवश्य ही जान पड़ता है कि इस में कुछ गोल माल अवश्य है।

यमधर—भाई! मुझे तो यह श्रेष्ठी कुमार बिल्कुल निर्दोष समझ पड़ता है इस की सूरत से यह नहीं मालूम होता कि इस ने ऐसा खोटा कार्य किया है।
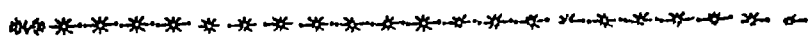
यमपाल—भाई ! तुम अभी नादान लडके हो तुमने देखा ही क्या है ? ऐसे कितने ही निर्दोष, प्राण दण्ड की तख्ती पर चढ़ा दिये गए हैं और कितने ही अपराधी व्यक्ति आनन्द से मज़ा उड़ा रहे हैं। भाई आज कल की राजनीति ही ऐसी है, जिसे हाकिम ने दोषी समझ लिया वही दोषी और जिसे निर्दोष कह दिया वही निर्दोष। इसमे कोई सत्य प्रमाण आदि की आवश्यकता नही।

यमधर—क्या ऐसी वात है ? भाई मुझे तो यह महारानी जी का जाल मालूम पड़ता है।

यमपाल—हां होगारे ! तुझे इन बातों से क्या प्रयोजन। चल ! बड़ी बात वाला आया ! अगर कोई सुन लेगा तो अभी इसी कुमार के साथ २ हमारी फाँसी लगाने की भी तैयारी होगी और अभी किसी अन्य वधिक को तलाश करना पड़ेगा।

(दोनों वध्यभूमि पर पहुंच कर कुमार सुदर्शन को फांसी की तख्ती पर खडा करते है और उसके गले मे फँदा डालना चाहते है। इसी समय एक बड़ा भयानक शब्द होता है। दोनों वधिक आश्चर्यसे साम्हने देखने लगते हैं। इसी समय मणिकेतु देव प्रगट होकर कुमार सुदर्शन को बंधन विमुक्त कर देता है। शूली के स्थान पर रत्नजटित सिंहासन प्रकट होजाता है और देवगण कुमार को उस पर विराजमान कर देते है। दोनों वधिक भय संयुत होकर राजा के समीप भाग जाते है)
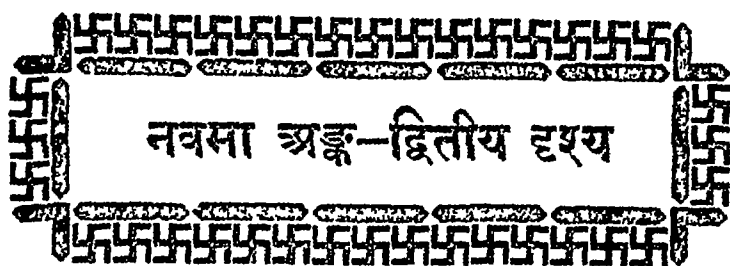
स्थान—राजा धात्रीवाहन की राज्य सभा. दोनों वधिक भयभीत हुए एक ओर खड़े हुए है।

धात्री वाहन—(वधिको की ओर देख कर) तब तुम क्या कहते हो, कि जैसे ही शूली पर चढ़ाया त्योंही शूली के स्थान पर सिंहासन हो गया। क्या यह बात बिलकुल सत्य है।

यमधर—हां महाराज! यहबात बिलकुल सत्य है। हमने यह समस्त कार्य अपने नेत्रों से स्वयं देखा है हम उसे शूली पर चढ़ाने को थे कि इसी समय एक भयानक शब्द हुआ और कुछ समय पश्चात् हमने देखा कि शूली के स्थान पर सिंहासन होगया है और कुछ विचित्र प्रभाधारी व्यक्ति ने श्रेष्ठीकुमार को बंधन विमुक्त कर रत्नजटित सिंहासनपर आरूढ़ कर दिया।

धात्रीवाहन—तब तुम्हारे होते हुए भी उस के प्राण बचगए।

यमधर—जी महाराज! उसके प्राण ही नही बचगए, किन्तु वह बहुमूल्य आभूपणों से भी भूषित हो गया।
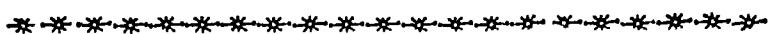
धात्रीवाहन—(आश्चर्य से) ऐं ! क्या कहा ? तब उसके शरीर पर कुछ आभूषण भी थे।

यमधर—जी महाराज ! और कुछ व्यक्ति आकाश से जय जय शब्द भी कर रहे थे।

धात्रीवाहन—मैं समझ गया। यह सब उसी दुष्ट सुदर्शन की लीला है। उसने अपनी विद्याके बल से ही इस प्रकार मायाचारी फैलाई है (क्रोध से) अच्छा ! मै अभी उसे इस धूर्तता का मज़ा चखाता हूँ (सेनाध्यक्ष से) सैनापति ! शीघ्र समस्त सैनिकों समेत जाकर उस दुष्ट सुदर्शन को जीवित ही पकड कर मेरे साम्हने ले आओ।

सेनापति—महाराज ! जो आज्ञा; अभी जाता हूँ।

(सेनापति बड़ी भारी सैन्य सजाकर वध्य भूमि में जाता है। इधर मणिकेतु देव भी अपने विद्यावल से एक बड़ी भारी सैन्य बनाता है। दोनोंका परस्पर युद्ध होता है। मणिकेतु देव सेनापति समेत समस्त सैना को अपने विद्यावल से मूर्छित कर देता है। केवल एक सैनिक रह जाता है वह राजा के समीप जाता है। और राजा को समस्त संवाद सुनाता है। राजा क्रोधित होकर स्वयं युद्ध के लिये आता है और मणिकेतु देव उसे पराजित कर बंधन युक्त कर लेता है)

—*—*—*—

(स्थान—वध्यभूमि; सुदर्शनकुमार रत्नजड़ित सिंहासन पर बैठे हुए है, समीप ही मणिकेतु देव खड़ा हुआ है, साम्हने महाराज मणिकेतु बन्धनयुक्त खड़े हुए है और मैदान में चारो ओर राजा की सेना बेहोशावस्था में पड़ी हुई है ।)

मणिकेतु—महाराज ! आप हमारे क़ैदी है । कहिए, अब आप क्या चाहते हैं ?

धात्रीवाहन—हे भद्र ! मुझे ज्ञात नही होता कि यह समस्त चमत्कार क्या है ? मै बडे आश्चर्य में पड़ रहा हूँ । कृपया विदित कीजिए आप कौन है ?

मणिकेतु—महाराज ! मै स्वर्ग निवासी मणिकेतु नामक देव हूँ । इन्द्र की आज्ञासे इस धर्म भक्त सुदर्शनकुमार की रक्षार्थ यहां उपस्थित हुआ हूँ । मैने देखा कि जब आप दुराचारिणी रानी की मिथ्यावादिता पर विश्वास कर के अन्याय पूर्वक एक सत्य प्रणी व्यक्ति का प्राण नष्ट कराना
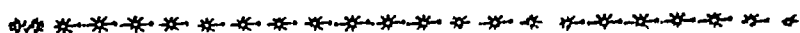
चाहते हैं, तब मैंने इस प्रकार उस की रक्षा की है और आप को बन्धन युक्त किया है।

धात्रीवाहन—देव ! कृपया मुझे क्षमा कीजिए और इस बन्धन से विमुक्त कीजिए !

मणिकेतु—महाराज ! आप को बन्धन विमुक्त करने का इस धर्मात्मा सुदर्शन कुमार को ही अधिकार है। मैं तो इन का आज्ञाकारी सेवक हूं। आप उन से प्रार्थना कीजिए। वह आप को क्षमा कर देंगे।

धात्रीवाहन—(सुदर्शनकुमार के चरणों में अपना मस्तक झुका कर) हे धर्म भक्त कुमार ! मुझे अपनी कृति पर अत्यन्त खेद है। मुझे यह किंचित् भी ज्ञात नहीं था कि आप इतने सत्य प्रणी और महात्मा पुरुष हैं। प्रभो ! आप धन्य हैं, आप मानव समाज के भूषण है, कृपया मेरी अज्ञानता पूर्ण क्रिया पर ध्यान न देते हुए मुझे क्षमा कर अपनी असीम दया का परिचय दीजिए। महात्मन् ! महारानी अभया के कपटाचार में पड़ कर मैंने आप जैसे धर्मात्मा व्यक्ति को कष्ट दिया, इसका मुझे अत्यन्त खेद है। मैं नहीं जानता था कि स्त्रियें इतनी धूर्ता भी हो सकती है, अतएव हे कुमार ! आप मेरा अपराध क्षमा कीजिए।

सुदर्शन—महाराज ! आप का कोई अपराध नहीं था यह मेरे सत्य प्रण की परीक्षा थी, जिस में मैं सफलता पूर्ण उत्तीर्ण हुआ। हां किन्तु इतना अवश्य है, कि आप की न्याय शीलता पर अत्यन्त खेद है, जो आपने किसी प्रकार के
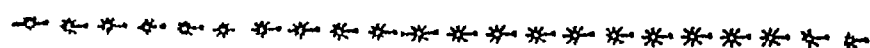
प्रमाण अथवा विचार किए बिना ही यह दण्ड विधान किया।

धात्रीवाहन—कुमार ! मुझे इस बात का अत्यन्त खेद है, कि क्रोध के आवेश में आकर मैंने इस विषय पर किंचित् भी विचार नहीं किया। भविष्य मे इस प्रकार अन्याय पूर्ण कार्य मुझ से कदापि नहीं होगा, आप मुझे क्षमा कीजिए।

सुदर्शन—राजन् ! मैं तुम्हारे इस पश्चाताप करने के उपलक्ष्य में तुम्हें क्षमा करता हूँ (मणिकेतु की ओर देखकर) भद्र मणिकेतु ! तुमने निश्चित समय पर आकर मेरी बड़ी रक्षा की। तुम इस कृपा के लिए धन्यवाद के पात्र हो। महाराजा धात्रीवाहन अपने अपराध का पश्चाताप करते हैं; इन्हें अब शीघ्र बन्धन विमुक्त कर दीजिए।

मणिकेतु—प्रभो ! मैं ने केवल अपना कर्तव्य पालन किया है। यदि आपके ऊपर इस प्रकार अन्याय होते अवलोकन कर आपकी रक्षा न की जाती तो यह धर्म के प्रति अत्यन्त द्रोह होता। (धात्रीवाहन की ओर देखकर) राजन् ! इन दयाशील कुमार सुदर्शन की आज्ञा से मैं आप को बन्धन विमुक्त करता हूँ, किन्तु स्मरण रखिए कि भविष्य में ऐसे धर्मात्मा व्यक्तियों के प्रति इस प्रकार अन्याय पूर्ण कार्य करने का साहस कभी मत कीजिए।

(मणिकेतु राजा को बन्धन विमुक्त कर देता है। समस्त सेना को भी मंत्र बल से सचेष्ट कर देता है और राजा कुमार के सम्मुख नत मस्तक होता है)

(पटाक्षेप)

नवमा अङ्क—चतुर्थ दृश्य

स्थान—राज्य सभा, महाराजा धात्रीवाहन उच्च सिंहासन पर बैठे हुए हैं। समीप ही कुमार सुदर्शन विराजमान हैं। सामने सैनिकगण विषयानन्द और उस के मित्रों को पकडे हुए खडे है। एक ओर महारानी अभया और पंडिता धाय खडी हुई हैं।

धात्रीवाहन—(महारानी अभया की ओर देख कर) तुम्हें नगर के प्रसिद्ध श्रेष्ठी कुमार सुदर्शन के ऊपर व्यभिचार की चेष्टा करने, एवं मिथ्या दोषारोपण करने के अपराध में प्राण दण्ड की आज्ञा दी जाती है (धाय की ओर देखकर) और तुझे व्यभिचार सम्बन्धी कार्य में सहायता पहुंचाने के अपराध में देश निकाले का दण्ड दिया जाता है।

सुदर्शन—महाराज ! अपने कुकृत्य द्वारा इन्होंने संसार में पूर्ण अपयश को प्राप्त कर लिया है। इन का यह उपयुक्त दण्ड हो चुका। अब आप इन्हें क्षमा कर दीजिए।

धात्रीवाहन—कुमार आप का कथन वास्तव में उचित है, किन्तु ऐसे अपराधी को इस प्रकार क्षमा कर देना ठीक नही है। इन्हें इस का उपयुक्त दण्ड मिलना चाहिए जिस से कि यह भविष्य में इस प्रकार कुटिल कार्य न कर सकें।

--*-*-*-*-* * *-*-* *-* *-* *-*-*-*-*-*-*-* *
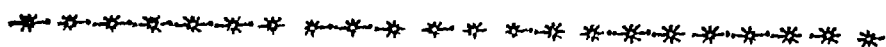
सुदर्शन—महाराज ! दण्ड के द्वारा दुष्कृत्य का प्रतिकार नहीं होता। उसका प्रतिकार है केवल मात्र क्षमा । क्षमा द्वारा ही पतित व्यक्ति का पुनः पुण्य संस्कार होता है और वह अपने कुकृत्य पर पूर्ण पश्चाताप करके उच्च आदर्श को प्राप्त करता है। महारानी जी को अपनी इस क्रिया पर पश्चाताप हो रहा है। आप उन्हें क्षमा कीजिए।

धात्रीवाहन—कुमार ! आपका हृदय अत्यंत महत् और उदार है,मैं आपकी आज्ञा का उल्लंघन कदापि नही कर सक्ता (महारानी और धायकी ओर देखते हुए) मैं कुमार सुदर्शन की महान् उदारता के कारण तुम दोनों को क्षमा करता हूँ ।

सभासद्गण—धन्य है ! कुमार सुदर्शन की इस महान् उदारता के लिए धन्य है।

धात्रीवाहन—(सुन्दरी से) बेटी ! मुझे तुम्हारी आपत्ति की समस्त कहानी विदित हो चुकी है तेरी इस दृढ़ प्रतिज्ञता और धार्मिकता से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम धैर्य धारण करो और सुख पूर्वक अपने मातापिता के समीप निवास करो । तुम्हारा उचित न्याय होगा (विषयानन्द आदि की ओर देख कर) मेरे राज्य को दुर्व्यसनी व्यक्तियों ने खूब कलंकित कर डाला है। आज इन पापात्माओं का दमन कर राज्य से दुराचारियोंका अन्त करूंगा। दुष्टो ! आज तुम्हें अपने कुकृत्य का पूर्ण दंड मिलेगा। सैनिकों ! जाओ इन्हें इसी समय पर फांसी की तख्ती पर चढ़ा दो और राज्यसे अपवित्रताका अन्त करो।

सुदर्शन—महाराज ! इन पापियों को भी आज क्षमा-

कर दीजिए और इन्हे पुनः मनुष्य बनने का अवसर दीजिए।
मुझे आशा है, यह अपने पाप का स्वयं प्रायश्चित करेंगे।

विषयानन्द और उसके मित्र गण—(स्वगत) हाय! हम लोगों ने इस पवित्रात्मा के विषय में किस प्रकार घृणित विचार किए थे, किन्तु यह महात्मा, बडा दयालु और धर्मशील है (प्रत्यक्ष में) महाराज! हम लोगों को क्षमा कीजिए। हम लोगों ने दुर्वासनाओं के वशवर्ती होकर इस प्रकार जो दुष्कृत्य किया, इसका हमें अत्यन्त पश्चात्ताप है।

धात्रीवाहन—कुमार! मैं आपके हृदय की उदारता का वर्णन नही कर सक्ता, जो ऐसे पापियो के प्रति आप इस प्रकार दयाका भाव धारण करते है। मैं आपकी आज्ञा से इन्हें भी क्षमा करता हूँ। सैनिको! इन्हें बंधन विमुक्त करदो।

(विषयानन्द और उसके मित्रगण कुमार के चरणोंपर गिर पडते है। समस्त सभासद गण धन्य २ करते है। कुमार सुदर्शन के ऊपर पुष्पवृष्टि होती है, नृत्यकाएं कुमार का यशो गान करती है।

धन्य सुदर्शन कुमार, धन्य! धन्य! धन्य!
धर्मनिरत सत्यप्रणी, मनुजों में शिरोमणी
दयाधार, हे कुमार! धन्य! धन्य! धन्य!
ब्रह्मचर्य पालक दृढ, सत्यधर्म धारक दृढ़,
विश्ववद्य, जगत्मन्य, धन्य! धन्य! धन्य!
सुदृढ़ अचल, धीर वीर, मदन जयी अटल वीर,
इन्द्र पूज्य, हे अनन्य, धन्य! धन्य! धन्य!

* इति *